मस्तिष्क
प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष

मस्तिष्क प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष

●

लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

●

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् **२०११** मूल्य : २१.०० रुपये

विषय-सूची

मानवी चेतना की रहस्यमय परतें यदि समझी जा सकें और समुन्नत की जा सकें तो निश्चय ही उसे अत्यंत उत्कृष्ट कोटि की जीवन की सफलता कहा जाएगा। भौतिक विज्ञान स्थूल जगत् में बिखरी हुई शक्ति को देखकर चकित है और उसमें से बहुत कुछ करतलगत करने के लिए लालायित है।

समीपवर्ती विचित्रताओं में सबसे बड़ा है, मस्तिष्क की टोकरी में रखा हुआ सूक्ष्म शक्तियों और दिव्य क्षमताओं का भंडागार, पर कठिनाई यह है कि जिस प्रकार अपने ही रक्त में चल रही हलचलों को जान पाना दुरूह है, उसी प्रकार मस्तिष्क को समझना कठिन है।

मानसिक चेतना पर नियंत्रण प्राप्त कर सृष्टि का सबसे बड़ा स्रोत हाथ लग सकता है।

जो चाहें, सो सहज ही पाएँ

●

अलाबामा (अमेरिका) राज्य के गाड्स डेन नगर के पास एक गाँव में रहने वाले एक हाईस्कूल के विद्यार्थी को अपने मित्र को चिढ़ाने की सूझी। कोयल बोलती है तो उसको चिढ़ाने के लिए गाँवों के बच्चे उसी की ध्वनि और लहजे में स्वयं भी कुहू करते और बड़े प्रसन्न होते हैं। इसी विनोद के भाव में इस विद्यार्थी ने भी अपने मित्र को चिढ़ाना प्रारंभ किया; पर उसकी प्रक्रिया अन्य लोगों से न केवल भिन्न थी, अपितु विलक्षण भी थी कि जिसे अतींद्रिय क्षमता ही कहा जा सकता है।

फ्रैंक रेन्स नामक इस विद्यार्थी की विशेषता यह थी कि वह अपने साथी के कुछ भी बोलने के साथ ही हूबहू वही शब्द उसी लहजे में और बिना एक क्षण का विलंब किये, उसके अक्षरों की ताल बैठाते हुए (मानो उसके मन में भी उस समय वही भाव उठ रहे हों, जो वह दूसरा साथी व्यक्त कर रहा था) बोलने लगता था।

अतींद्रिय क्षमताओं की जाँच करने वाले कई विशेषज्ञों और मनोवैज्ञानिकों ने उनकी जाँच की तो वह यह नहीं बता पाए कि इसका रहस्य क्या है, स्वयं फ्रैंक रेन्स भी नहीं जानता था। उसकी एक विशेषता यह भी थी कि वह जब पढ़ता था, तभी एक बार के अध्ययन से पूरी पुस्तक अक्षरशः कंठस्थ कर लेता था। एक बार परीक्षा में एक ऐसा प्रश्न आया, जिसे वह नहीं जानता था। उस समय इसी क्षमता ने साथ दिया। एक-दूसरे विद्यार्थी के मुख की भावभंगिमा को देख-देखकर उसने जो कुछ लिखा था, वही स्वयं भी परीक्षा-पुस्तिका में लिख दिया।

विद्यार्थी जीवन से ही उन्हें अपनी इस अतींद्रिय क्षमता का सार्वजनिक प्रदर्शन करना पड़ा और शीघ्र ही वह अंतर्राष्ट्रीय ख्याति तक पहुँच गये। जिसने भी उनका कार्यक्रम देखा वह आश्चर्य-चकित रह गया।

फ्रैंक रेन्स की विशेषता यह है कि वह केवल अमेरिकी भाषा जानते हुए भी दुनिया भर की तमाम भाषाओं में बोलने वालों के साथ वही अक्षर बिलकुल वैसे ही उच्चारण और भावभंगिमा के साथ दोहरा देते थे। एक बार प्रसिद्ध हास्य अभिनेता जेरी ल्यूविर ने एक कार्यक्रम रखा। इसमें जिना लोलो ब्रिगिडा नामक एक स्त्री ने भाग लिया। ब्रिगिडा विश्व की अनेक भाषाएँ बोल लेती थी, उन्होंने पहले तो एक-एक भाषा के वाक्य बोले, जिन्हें रेन्स ने उनके उच्चारण के साथ ही दोहरा दिया। तब फिर वे खिचड़ी बोलने लगीं, जिसमें थोड़ी इंगलिश थी; हिंदी, रसियन, जर्मन और फ्रेंच भी। आश्चर्य कि खिचड़ी भाषा के खिचड़ी वाक्य-विन्यास को भी उन्होंने ज्यों का त्यों दोहरा दिया।

एक बार किसी दर्शक ने कह दिया कि रेन्स बोलने वाले के ओठों की हरकत से बोले जाने वाले शब्द का अनुमान करके उच्चारण करता है। यद्यपि रेन्स बोलने वाले के इतना साथ बोलता था कि अनुमान की कल्पना ही नहीं की जा सकती, फिर भी उन्होंने तब से अपना मुँह उल्टी दिशा में करके बोलना प्रारंभ कर दिया।

फ्रैंक रेन्स का आहार-विहार बहुत शुद्ध, प्रकृति सात्त्विक और विचार बड़े धार्मिक थे, वे स्वयं यह बात मानते थे कि यह सब जो वह दिखा देते हैं, वह एकाएक नहीं हो जाता वरन पहले मैं उसकी तैयारी करता हूँ। यदि मेरा आहार-विहार कभी अशुद्ध हो गया तो मैं इस तरह का प्रदर्शन करने से पहले आवश्यक शुद्धि के लिए साधना करता हूँ।

एक बार न्यूयार्क में उनकी अद्‌भुत परीक्षा ली गई। एक डॉक्टर नियुक्त किया गया। उसने लगभग २० पेज का एक वैज्ञानिक लेख तैयार किया, जिसमें चिकित्सा शास्त्र के ऐसे कठिन शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया गया था, जिनकी सर्वसाधारण को जानकारी तो दूर, बड़े-बड़े डॉक्टर तक शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते थे। डॉक्टर एक कोने में खड़े हुए और फ्रैंक रेन्स दूसरे

कोने में। रेन्स के सामने टेप रिकार्डर था और मुँह डॉक्टर से उल्टी दिशा में, अर्थात् वह डॉक्टर स्पीच पढ़ता गया और रेन्स साथ-साथ दोहराते गए। पीछे टेप रिकार्डर सुना गया तो लोग आश्चर्यचकित रह गये कि साधारण शिक्षा वाले रेन्स ने वह कठिन उच्चारण भी कितने साफ और स्पष्ट ढंग से कर दिये हैं। लोग मनुष्य "मन" की विलक्षण शक्ति पर आश्चर्यचकित रह गये।

टेलीफोन और टेलीविजन पर भी अपने कार्यक्रम प्रदर्शित करके फ्रैंक रेन्स ने उपरोक्त बातों की सत्यता प्रमाणित कर दी। टेलीफोन पर चाहे कितनी दूर कोई व्यक्ति खड़ा हो, चाहे जिस भाषा में बोलता जाये, हाथ में टेलीफोन पकड़े फ्रैंक रेन्स भी उसके साथ ही वही उच्चारण दोहराते चले जाते हैं। यहाँ तो ओंठ क्या, उस व्यक्ति का शरीर ही हजारों मील दूर होता था। यही बात टेलीविजन पर भी होती थी। सन् १९८० तक उनके टेलीविजन पर लगभग २५ कार्यक्रम हो चुके थे। जेरी ल्यूविस जॉनसन और जैक पार के साथ उन्होंने 'आई हैव गॉट ए सीक्रेट' और 'टु नाइट' कार्यक्रमों में भी भाग लेकर लोगों को आश्चर्यचकित किया, पर उनकी इस आश्चर्यजनक क्षमता का उपयोग मात्र मनोरंजन हो गया था। उसका उपयोग किसी बड़े कार्य में होना चाहिए था, जैसा कि फ्रैंक रेन्स स्वयं कहते थे कि मेरे भीतर से ऐसी आवाज आया करती है कि आगे एक ऐसा युग आ रहा है, जब लोगों में इस तरह की अतींद्रिय क्षमताएँ सामान्य हो जाएँगी। मुझे ऐसा लगता है कि मुझे उसी दिशा में काम करना चाहिए। यह प्रेरणा क्यों उठती है ? कहाँ से आती हैं ? यह वे स्वयं नहीं जानते।

इस तरह की क्षमताएँ मानसिक शक्तियों के विकास से ही प्राप्त हो सकती हैं। साधना, तप, अनुष्ठान आदि द्वारा मनश्चेतना को उसी स्तर पर पहुँचाया जाता है, जहाँ से कि वह इस तरह की अतींद्रिय कही जाने वाली क्षमताएँ प्राप्त कर सके, पर वे वस्तुतः होती मन की ही शक्तियाँ हैं।

सामान्यतः यह समझा जाता है कि मस्तिष्क सोचने का कार्य करता है। निर्वाह की आवश्यकताएँ जुटाने तथा प्रस्तुत कठिनाइयों का समाधान ढूँढ़ना ही उसका काम है। उसकी ज्ञान-आकांक्षा इसी प्रयोजन के लिए उपयोगी जानकारी प्राप्त करने तक सीमित हो सकती है।

उसके पीछे अचेतन मन की परत है, वह रक्त संचार, हृदय की धड़कन, श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष, ग्रहण-विसर्जन, निद्रा-जाग्रति जैसी अनवरत शारीरिक क्रिया-प्रक्रियाओं का स्वसंचालित विधि-विधान बनाये रहता है।

आदतें अचेतन मन में जमा रहती हैं और आवश्यकता पूर्ति के लिए चेतन मन काम करता रहता है। मोटे तौर पर मस्तिष्क का कार्य क्षेत्र यहीं समाप्त हो जाना चाहिए।

इससे आगे जादू से बने संसार का अस्तित्व सामने आता है। जिसकी अनुभूति तो होती है, पर कारण और सिद्धांत समझ में नहीं आता। इस प्रकार की अनुभूतियाँ प्रायः अतींद्रिय मनःचेतना की होती हैं। भूतकाल की अविज्ञात घटनाओं का परिचय, भविष्य का पूर्वाभास, दूरवर्ती लोगों के साथ वैचारिक आदान-प्रदान, अदृश्य आत्माओं के साथ संबंध, पूर्वजन्मों की स्मृति, चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियाँ, शाप-वरदान, जैसी घटनाएँ अतींद्रिय अनुभूतियाँ मानी जाती हैं। व्यक्तित्व का स्तर भी इसी उपचेतना की परतों में अंतर्निहित होता है। विज्ञानी इसे पैरासाइकिक तत्त्व कहते हैं। इसके संबंध में इन दिनों जिस आधार पर शोध कार्य चल रहा है, उसे परामनोविज्ञान—पैरासाइकालॉजी नाम दिया गया है।

स्थूल और कारण शरीरों के बीच एक सूक्ष्म शरीर भी है। त्रिविध शरीरों में एक स्थूल है, जिसमें ज्ञानेंद्रियों का, कर्मेंद्रियों का समावेश है। सूक्ष्म को मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की चार परतों में विभक्त किया गया है। मनोविज्ञानी इसे चेतन और अचेतन मन में विभक्त करते हैं और उसके कई-कई खंड करके, कई-कई तरह से उस क्षेत्र की स्थिति को समझाने का प्रयत्न करते हैं।

कारण शरीर को अंतरात्मा कहा जाता है। संवेदनाएँ एवं आस्थाएँ उसी क्षेत्र में जमी होती हैं। योगी लोग प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा इसी क्षेत्र को जाग्रत् एवं परिष्कृत करने का प्रयास करते हैं।

अतींद्रिय क्षमता सूक्ष्म शरीर का—मस्तिष्कीय चेतना का विषय है। इंद्रिय शक्ति के आधार पर ही प्रायः मनुष्य अपनी जानकारियाँ प्राप्त करता है और उस प्रयास में जितना कुछ मिल पाता है, उसी से काम चलता है। मस्तिष्क ब्रह्मांडीय चेतना से संपर्क बना सकने और उस क्षेत्र की जानकारियाँ प्राप्त कर सकने में समर्थ है। अविकसित स्थिति में उसे ज्ञान संपादन के लिए इंद्रिय उपकरणों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वे जितनी जानकारियाँ दे पाती हैं उतना ही व्यक्ति का ज्ञान-वैभव संभव होता है, पर जब मस्तिष्कीय चेतना का वर्तमान अथवा पिछले प्रयत्नों से अपेक्षाकृत अधिक विकास हो जाता है तो फिर बिना इंद्रियों की सहायता के ही समीपवर्ती एवं दूरवर्ती घटनाक्रम की जानकारी होने लगती है। इतना ही नहीं ब्रह्मांडव्यापी ज्ञान-विज्ञान की असंख्य धाराओं से अपना संपर्क बन जाता है। प्रयत्नपूर्वक थोड़ा-सा धीरे-धीरे ही कमाया जा सकता है, पर यदि किसी अक्षय रत्न भंडार पर अधिकार प्राप्त हो जाए तो अनायास ही धन कुबेर बना जा सकता है। अंतरिक्ष के अंतराल में असंख्य मनीषियों की ज्ञान संपदा बिखरी पड़ी है, विकसित सूक्ष्म शरीर उस ज्ञान भंडार से संबंध मिला सकता है और अपनी जानकारियों का इतना विस्तार स्वल्प समय में ही कर सकता है, जितना सामान्य प्रयत्नों से संभव नहीं हो सकता।

मनुष्य के उपचेतन मन का पक्षी मस्तिष्क के घोंसले में रहता भर है, पर वह उतने में ही आबद्ध रहने के लिए विवश नहीं है। वह देश और काल का, मर्यादाओं का अतिक्रमण करके हजारों वर्ष पूर्व की, अथवा हजारों मील दूर की घटनाओं को उसी प्रकार देख सकता है, मानो वे उसके ठीक सामने घटित हो रही हैं।

मानसोपचार विज्ञानी डॉ० थेमल्मामौस ने ठीक ही कहा है कि चेतन मस्तिष्क का दबाव यदि उपचेतन पर से हट जाए और वह स्वच्छंदतापूर्वक विचरण कर सकने की सुविधा प्राप्त कर सके तो उसके ज्ञान की और गति की क्षमता असीमित बन सकती है।

कई प्राणियों में यह क्षमता जन्म-जात ही होती है। अब ऐसे प्राणियों की इन क्षमताओं का उपयोग वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए भी किया जाने लगा है। रेडियो सक्रियता की माप के लिए फ्रेंच वैज्ञानिकों ने "गाहगर-बाउंटर" यंत्र बनाया, जिसकी कीमत लाखों डालर पड़ती थी। इस बीच कुछ जीवशास्त्रियों ने जब यह संकेत दिया कि चींटियों में यह सूक्ष्म संवेदना तो जन्मजात होती है, तब से इस यंत्र का निर्माण बंद कर दिया गया और अब इस कार्य के लिए वहाँ विधिवत् चींटियों की ही सेवा ली जाती है।

बाँस में कभी फूल नहीं देखे जाते, इनकी जड़ें ही वंशवृद्धि करती रहती हैं, किंतु ५० वर्ष बाद प्रायः बाँस में फूल आते और उसमें से फल भी निकलते हैं। ५० वर्ष की अवधि में यदि एक चूहे की वंशवृद्धि प्रारंभ हो तो उस समय तक ५० पड़पोते पहुँच जाएँगे, जिन्हें यह पता भी नहीं होगा कि बाँस में भी फल होते हैं; किंतु चूहे अपनी सुगंध विश्लेषण की सूक्ष्म बुद्धि से इस फल की उपयोगिता ताड़कर उसे खूब खाते हैं, यह फल उनकी प्रजनन क्षमता को कई गुना अधिक बढ़ा देता है। यह ज्ञान उन्हें किस तरह मिलता है। इस गुत्थी को जीवशास्त्री सुलझा नहीं पाये।

भूटान नरेश वांगचुक जिग्मेदोरगी पर किसी ने बम फेंका। बात १९६५ की है। आक्रमणकारियों का बहुतेरा पता लगाया गया, किंतु अच्छे जासूस भी असफल रहे। अंततः कार्य सेना को सौंपा गया और सेनाधिकारियों ने अपने प्रशिक्षित कुत्ते अलेकसी को इस बात के लिए चुना। कुत्ते ने हथगोले के टुकड़े सूँघे। यह एक विलक्षण बात है कि उन टुकड़ों में बारूद के अतिरिक्त और कोई गंध आये, किंतु इसे कुत्ते की घ्राण शक्ति का चमत्कार ही कहना चाहिए कि उसने उन टुकड़ों में लिपटी हुई मानव गंध को पहिचान लिया और महल से एक ओर

चल पड़ा। घटना को काफी समय हो गया था तथा स्थान की गंध सौ बार घुल चुकी होगी, किंतु कुत्ता वहाँ से चलकर तीन मील दूर एक मकान में रुका। फिर वहाँ से भी आगे चलकर एक बौद्ध मंदिर में जा घुसा, जहाँ एक आदमी छुपा बैठा था। कुत्ते के संकेत पर उसे पकड़ लिया गया। उसने न केवल अपराध स्वीकार किया, अपितु यह भी पता चला कि वह मकान भी उसी का था, जहाँ वह गोले फेंकने के बाद कुछ देर रुका।

कई बार ऐसा होता है कि जंगल में शेर बैठा होता है तथा हिरण उसके समीप ही घास चर रहा होता है। फिर भी वह न तो भयभीत होता है, न आतंकित; क्योंकि उसे ज्ञात रहता है कि शेर भूखा होने पर ही शिकार करता है और इस समय उसे ऐसी कोई परेशानी नहीं है। हिरण मन की बात कैसे जान लेता है ? जीव वैज्ञानिक इस आश्चर्यजनक तथ्य की शोध में लगे हुए हैं, पर अभी तक कुछ जानकारी मिली नहीं।

शेरनी जब किसी ऐसे युद्ध के लिए चलती हैं, जिसमें शत्रु समान शक्ति का हो तो वह अपने बच्चों को किसी सुरक्षित स्थान पर बैठा जाती है। युद्ध बच्चों की आँखों से ओझल चलता है। बच्चे इसी स्थान पर बैठे रहते हैं, किंतु इस बात की अनुभूति उन्हें न जाने कैसे हो जाती है कि अब युद्ध समाप्त हो गया और माँ की विजय हुई, वे शेरनी के पास विजय के बाद बिना बुलाये चले जाते हैं।

आधुनिक परामनोविज्ञान ने पूर्वाभास, दूर संचार तथा स्वप्नों में होने वाले भविष्य को पाँच ज्ञानेंद्रियों से भिन्न व अतिरिक्त छठवीं संवेदना (सिक्स्थ सेंस) की संज्ञा दी है। इस छठवीं संवेदना को आज बड़ी जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से देखा और खोजा जा रहा है।

न केवल मनुष्य अपितु जीवों में इस तरह की सूक्ष्म क्षमताएँ पाई गईं तो आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था। आज भी समुद्रों में चलने वाले जहाजों से यदि चूहे निकलकर स्वेच्छा से भाग निकलें तो नाविक आने वाले संकट का अनुमान कर लेते हैं, जबकि अनेक

बार अत्यधिक आधुनिक किस्म के यंत्र भी सही जानकारी देने में असमर्थ रहते हैं।

वर्मा की कलादान घाटी में एक बिल्ली की एक विचित्र समाधि बनी है। इसके चारों ओर लिखा है—"रैडी" कि यह बिल्ली हमारी समय पर सहायता न करती तो हम मारे जाते और पराजित होते"—इन शब्दों में वास्तव में जीवों में अदभुत अतींद्रिय क्षमता का इतिहास अंकित है। बात उन दिनों की है, जब वर्मा में अंग्रेजों और जापानियों के बीच युद्ध चल रहा था। एक दिन अंग्रेजों की टुकड़ी ने एक जापानी टुकड़ी पर आक्रमण कर दिया। जापानियों ने पीछे हटने का नाटक खेला। वास्तव में वे पीछे नहीं हटे वरन खंदकों में छिप गये, मानो वे सचमुच भाग गये हों। एक मेज पर वे ताजा पका पकाया खाना भी छोड़ गये, उसे देखते ही अंग्रेज सैनिक उस खाने पर टूट पड़े, किंतु अभी वे प्लेटों तक नहीं पहुँच पाये थे कि उनमें से एक सार्जेंट रैडी की काली बिल्ली उस खाने पर जा टूटी और बुरी तरह गुर्राकर अंग्रेज सैनिकों को पीछे हटा दिया। अंग्रेजों ने बिल्ली को धमकाया भी, पर वह अपनी क्रुद्ध मुद्रा में तब तक गुर्राती ही रही, जब तक वहाँ एक भयंकर धमाका नहीं हो गया। वास्तव में उस खाने के साथ बारूदी सुरंग का संपर्क जुड़ा था जो उन सैनिकों के प्राण ले सकता था, पर बिल्ली ने अपनी आत्माहुति देकर न केवल अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया अपितु उसने यह भी बता दिया कि, जीव जिन्हें हम तुच्छ समझते हैं, किस तरह विलक्षण आत्मिक गुणों—अतींद्रिय क्षमताओं से ओत-प्रोत होते हैं।

इसी तरह की एक घटना जर्मनी के साथ अंग्रेजों के युद्ध में कैंबरवेल में घटी थी। मिस्टर ज्योफरी नामक एक अंग्रेज ने एक बिल्ली पाल रखी थी। एक दिन जर्मन बमवर्षक जहाज कैंबरवेल से गुजरे। सारा परिवार घबड़ाकर मकान के एक कोने में दुबक गया, तभी उनकी बिल्ली बगीचे के तहखाने से दर्दनाक ध्वनि में म्याऊँ-म्याऊँ चिल्लाने लगी। पहले तो ज्योफरी उसे बुलाते रहे, पर

जब वह न आई तथा उसी तरह चिल्लाती रही तो उन्होंने समझा कि बिल्ली मरणासन्न हो गई है। सारा परिवार उसके पास पहुँचा। अभी वे तहखाने में घुसे ही थे कि दुबारा जहाजों ने आक्रमण कर बम बरसाये और वह मकान बुरी तरह विस्फोट के साथ मलवे में बदल गया। बिल्ली के इस अतींद्रिय ज्ञान के कारण ही ज्योफरी व उनका परिवार बच सका।

न्यूरो साइकेट्रिक संस्थान कैलीफोर्निया के डाइरेक्टर प्रो० क्रेग को नियेशन नाम की एक ऐसी महिला की जानकारी मिली, जिसके बारे में यह कहा जाता था कि वह किसी भी अज्ञात व्यक्ति की कोई भी वस्तु स्पर्श करके उसके संबंध में गोपनीय से गोपनीय बातें बता देती हैं। न केवल अतीत, अपितु वर्तमान और भविष्य संबंधी उनके उद्घोष सर्वथा सत्य पाये गये। विज्ञान ने दूर से दूर स्थान से शीघ्रतम संदेश के टेलीफोन, बेतार के तार व माइक्रोवेव यंत्र बनाये तो हैं, ऐसे यंत्र भी बने हैं, जो ऋतु और उसमें परिवर्तन की कुछ भविष्यवाणी भी कर सकते हैं, किंतु संसार के अरबों व्यक्तियों में से किसी भी एक व्यक्ति के अज्ञात, विश्वसनीय और गोपनीय भूत व भविष्य का सत्य उल्लेख विज्ञान के लिए एक चुनौती है। इसका अर्थ तो स्पष्टतः आइंस्टीन के सापेक्षवाद सिद्धांत के उस तत्त्व की खोज होनी है, जिसके बारे में उन्होंने यह कहा था कि यदि कोई वस्तु प्रकाश की गति से भी अधिक वेग ले सकती हो तो उसे अपने स्थान से चलकर ब्रह्मांड की परिक्रमा लगा आने में ऋण-समय लगेगा अर्थात् यदि वह अपने स्थान से २१ नवंबर, १९७७ को चलती है तो ब्रह्मांड का चक्कर लगाकर वह २० नवंबर, १९७७ को ही उसी स्थान पर आ जाएगा यह स्पष्टतः आत्मा या परमात्मा की ही विशेषता हो सकती है। अतएव प्रो० क्रेग ने घटना का विस्तृत शोध का निश्चय किया।

उन्होंने श्रीमती नियेशन को एक बंद कमरे में रखा और एक उनके सर्वथा अजनबी व्यक्ति की एक वस्तु दी। उस वस्तु को हाथ में लेते ही उन्होंने उस व्यक्ति का न केवल नाक-नक्शा

अपितु उसके पूर्व जीवन की अनेक घटनाएँ यों कह सुनाईं, मानो वे चलचित्र में सब देख रही हैं। कु० एडम नामक एक अन्य लड़की की अतींद्रिय क्षमता के बारे में प्रो० क्रेग ने लिखा है कि वह सूँघकर टेलीफोन पकड़कर दूरवर्ती वस्तुओं को ऐसे बता देती थी, मानो वह सामने पड़ी पुस्तक पढ़ रही हो।

इन घटनाओं का उल्लेख करने के बाद प्रो० क्रेग ने लिखा है परामनोविज्ञान ने (१) दूरानुभूति, (२) क्लेयरवायन्स, (३) दूरदृष्टि, (४) विचार संचालन (टेलीपैथी) संबंधी अन्य घटनाओं की प्रामाणिक खोजें की हैं, उनसे मनुष्य की विलक्षण अतींद्रिय क्षमता का पता चलता है, पर इन घटनाओं को इनमें से किसी भी कोटि में नहीं रखा जा सकता।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० फर्डीनेंड वान न्यूट्राइटर को उनके एक सहयोगी ने बताया कि एक ल्यूथिनियन लड़का किसी भी भाषा का, कितना ही बड़ा वाक्य गद्य अथवा पद्य आप कहें, उसी भाषा में अर्द्ध विराम, पूर्ण विराम सहित दोहरा देता है, यही नहीं—आप बोलना प्रारंभ करें तो वह स्वयं भी वही शब्द, उसी मोड़ और लचक के साथ इस तरह शब्द से शब्द मिलाकर बोलता चला जाता है, मानो उसे स्वयं ही वह पाठ कंठस्थ हो। प्रो० फर्डीनेंड ने कहा—संभव है वह ओठों की हरकत से उच्चारण पहचानने में सिद्धहस्त हो, सो उन्होंने स्वयं जाँच करने का निश्चय किया। उन्होंने उस बच्चे को एक कमरे में और दूसरे एक व्यक्ति को दूसरे कमरे में बैठाकर उसे कई भाषाएँ बदल-बदल कर लगातार बोलने को कहा। दोनों कमरों से माइक एक सामने के कमरे में लाकर रखे गये, जिसमें डॉ० फर्निनेंड स्वयं बैठे। प्रयोग प्रारंभ हुआ तो वस्तुतः वे अत्यंत आश्चर्यचकित रह गये कि लड़का एक दो भाषाओं का ज्ञाता हो सकता है, पर वह तो किसी को भी लाकर खड़ा करने से उसी की भाषा दोहरा देता था। इसका अर्थ यह हुआ कि बिना पढ़े हर विद्या में निष्णात् होना, ऐसा किसी भी पार्थिव या भौतिक सिद्धांत से संभव नहीं।

○ मन और मस्तिष्क ही सबका कारण

इस तरह की घटनाओं, क्षमताओं, सिद्धियों का आधार मनुष्य का मन-मस्तिष्क बताया जाता है। मस्तिष्क के इस पक्ष को मन भी कहा जा सकता है, पर मन और मस्तिष्क की क्षमताओं का विभाजन करने के लिए कोई स्थूल सीमा विभाजन नहीं किया जा सकता। मन का शारीरिक स्वास्थ्य और मनुष्य की आंतरिक-बाह्य परिस्थितियों पर अनिवार्य रूप से प्रभाव पड़ता है।

घटना २१ जनवरी, १७६३ की है। मादाम लुहरवेट अपने ४ वर्षीय पुत्र आरमंड को लेकर फ्रांस के सम्राट लुई सोलहवें को दिया जाने वाला मृत्यु दंड देखने गई। लुई सोलहवें की हत्या इतनी नृशंसतापूर्वक की गयी कि वहाँ का वीभत्स दृश्य देखकर आरमंड बहुत सहम गया। मादाम लुहरवेट अपने बच्चे को लेकर घर लौट आयीं और आरमंड खेलने लगा। खेलते-खेलते उसे वह वीभत्स दृश्य याद आया और अचानक बेहोश होकर गिर पड़ा। बेहोश आरमंड को अस्पताल ले जाया गया। डॉक्टर ने जाँच की और बताया कि बच्चे के मन पर किसी घटना का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

आरमंड होश में तो आ गया, पर उस घटना का प्रभाव उसके मन मस्तिष्क पर बुरी तरह हावी हो गया कि वह सो नहीं सका। एक दिन, दो तीन सप्ताह, उपचार किया गया। महीनों तक नींद की औषधि दी गयी, मालिश भी की गयी किंतु नींद नहीं आई तो नहीं ही आई।

माता-पिता को इस बात की चिंता हुई कि उनके बेटे के स्वास्थ्य पर न सोने के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। एक-दो दिन ही न सोने से मन उद्विग्न हो उठता है। विक्षिप्तता आने लगती है। सामान्य व्यक्ति यदि आठ घंटे प्रतिदिन नींद न ले तो, उन्हें अपना सामान्य जीवनक्रम भी चलाना कठिन हो जाये, परंतु आरमंड को देखकर यह सारी धारणाएँ निर्मूल सिद्ध हुईं।

न सोने के बावजूद भी आरमंड नियमित रूप से पढ़े, वे और लोगों की तरह शारीरिक श्रम करते। इतना ही नहीं पढ़-लिखकर

वकील बन गये। रात में जब लोग सो जाया करते तब भी वह मुकदमों के मजमून तैयार किया करते। आरमंड जैक्विस के नाम से विख्यात उपर्युक्त वकील जीवन के अंतिम क्षणों तक नहीं सो पाये। ७५ वर्ष की आयु में आरमंड की मृत्यु सन् १८६४ में हुई। इस बीच उन्हें एक क्षण को भी नींद नहीं आयी।

इस तरह की और कई घटनाओं को संकलित करने और उनका अध्ययन करने के बाद डॉ० सोलेमन ने एक पुस्तक लिखी है—"माइंड मिस्ट्रीज एंड मिरेकल्स।" इस पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि मन एक बहुत सूक्ष्म रहस्यमयी और अद्‌भुत शक्तिशाली सत्ता है। उसके रहस्यों को समझ पाना अति दुष्कर है। भारतीय तत्त्व दर्शन में तो मन को ही सब सफलता और असफलताओं का मूल कहा है। यहाँ तक कि उसे ही बंधन और मोक्ष का कारण कहा गया—**"मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो"** अर्थात् बंधन और मुक्ति का कारण यह मन ही है।

उपरोक्त घटना का विश्लेषण करते हुए डॉ० सोलेमन ने लिखा है—लुई को दिये गये मृत्यु दंड से आरमंड की मनश्चेतना इतनी आतंकित या विचलित हो गयी थी कि उसने ७१ वर्ष की आयु तक आरमंड को सोने नहीं दिया। परिस्थितियों और घटनाओं से प्रभावित मन शरीर को किस प्रकार नचाता है, इसके उदाहरण तो आये दिन देखने में आते ही हैं। क्षुब्ध स्थिति में लटका हुआ विवर्ण चेहरा, चिंता और परेशानी के समय नींद का उड़ जाना, प्रसन्नता के समय खिल उठना आदि बातें मन और शरीर के संबंधों को प्रामाणित करती हैं।

यह तो सामान्य जीवन की छोटी-छोटी बातें हैं, जिनमें मन का शरीर पर प्रभाव परिलक्षित होता है। अन्यथा मनुष्य का मन बड़ा समर्थ और बलवान् है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहंचलम्। (गीता ६।३५)

अर्जुन ! निस्संदेह यह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है।

सभी शास्त्रकारों और योगी, सिद्ध, महापुरुषों ने मन को समस्त शक्तियों का भंडार निरूपित करते हुए इसको वश में करना आवश्यक बताया है, क्योंकि जीवसत्ता और ब्रह्मसत्ता के बीच यदि कोई चेतन सत्ता काम करती है, उन्हें मिलाती है या विलग करती है तो वह मन ही है।

मन की इस शक्ति को भारतीय महर्षि मुनियों ने पहले ही जान लिया था। आधुनिक विज्ञान भी अब उसकी प्रचंड सामर्थ्य को स्वीकार करने लगा है। साइकोलॉजी, पैरासाइकोलॉजी, मेटाफिजिक्स और फेथहीलिंग आदि विज्ञान की धाराएँ मन:शक्ति के ही अध्ययन और शोध की धाराएँ हैं। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि जिस तरह मनुष्य ने शरीर को भोग की वस्तु मानकर अपने आपको महान् आध्यात्मिक सुख संपदाओं से वंचित कर लिया है, उसी प्रकार मन जैसी प्रचंड शक्ति का उपयोग भी वह केवल लौकिक स्वार्थों और इंद्रिय भोगों तक ही सीमित रखकर उसे नष्ट करता रहता है।

मन भौतिक शरीर की चेतन शक्ति है। आइंस्टीन के शक्ति सिद्धांत के अनुसार एक परमाणु से ३,४५,६६० लाख कैलोरी शक्ति उत्पन्न हो सकती है। वस्तुत: एक परमाणु में कितनी शक्ति है, इसका तो अभी ठीक-ठीक पता नहीं चलाया जा सका है, क्योंकि इस क्षेत्र में नित नए रहस्य खुलते जा रहे हैं। फिर भी पदार्थ को शक्ति में बदलने की जितनी संभावनाएँ सामने आती हैं, उनके अनुसार एक पौंड अर्थात् ४५३.६ ग्राम पदार्थ की शक्ति १४ लाख टन कोयला जलाने पर प्राप्त होने वाली शक्ति होगी।

यद्यपि पदार्थ को पूरी तरह शक्ति में बदल पाना अभी संभव नहीं हुआ है। यदि वह संभव हो जाए तो ४५३.६ ग्राम कोयले से संपूर्ण अमेरिका के लिए एक माह तक चलने वाली बिजली तैयार हो सकती है। विज्ञान के लिए पदार्थ को शक्ति में रूपांतरित करना भले ही संभव न हुआ हो, परंतु परमात्मा ने मनुष्य शरीर को इस प्रकार सृजा है कि उसके पास शरीर की विद्युत् शक्ति मन के रूप में पहले से ही विद्यमान है। मन शरीर रूपी द्रव्य की विद्युत् शक्ति

ही है और यदि इसका उपयोग किया जा सके तो ६० किलोग्राम वाले शरीर की विद्युत् शक्ति अर्थात् मन की सामर्थ्य पूरे भारत को १० वर्ष तक विद्युत् देती रह सकती है।

डॉ० बैनेट ने इसी आधार पर मन के लिए कहा है कि यह एक महान् विद्युत् शक्ति है। इस शीर्षक पर उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है, जिसका नाम है 'माइंड ए ग्रेट इलेक्ट्रिकल फोर्स', इस पुस्तक में उन्होंने बहुत सारे तथ्य और आँकड़े दिये हैं तथा बताया है कि इस शक्ति को एक निश्चित दिशा में नियोजित कर दिया जाए तो उसके चमत्कारी परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

वेद ने इस शक्ति को "ज्योतिषां ज्योति" कहा है। इसकी प्रचंड क्षमता से ही भारतीय योगी, ऋषि प्राचीन काल में शून्य आकाश में स्फोट किया करते थे और इसी शक्ति द्वारा समस्त भूमंडल की मानवीय समस्याओं का समाधान और नियंत्रण करते थे। शेर और गाय को एक ही घाट पर पानी पिलाने की क्षमता इसी शक्ति में विद्यमान थी।

इस संदर्भ में गीताकार ने छठवें अध्याय में एक और महत्त्वपूर्ण निर्देश दिया है—

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः।।५।।
बंधुरात्मनस्तस्य यैनात्मैतः
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मेव शत्रुवत्।।६।।

अर्थात्—आत्मचेतना आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु। आत्मसत्ता जिसे यहाँ मन के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, उस व्यक्ति का तो आप ही अपना मित्र है, जिसने उसे जीत लिया है और जिसने मन पर कोई नियंत्रण नहीं कर रखा है, उसके साथ यह आप ही शत्रु की तरह बर्तता है।

मनुष्य इतनी अतुल शक्ति संपत्ति का स्वामी होते हुए भी केवल उसका नियंत्रण और नियोजित न कर पाने के कारण परमुखापेक्षी तथा दीन बना रहता है। अनियंत्रित और अपरिष्कृत मन के

दुष्परिणाम शक्ति के दुरुपयोग की तरह के ही तो होंगे। आग से खाना बनाया या आग लगायी जाए बिजली से रोशनी पैदा की जाये अथवा प्राण संकट खड़ा किया जाये, अणुशक्ति का उपयोग मानव कल्याण के लिए किया जाए अथवा नरसंहार के लिए यह उपयोग की दिशा पर ही निर्भर है। मनःशक्ति को विकृत और घृणित बनाये रखकर उसके दुरुपयोग, दुष्परिणाम का आधार ही खड़ा किया जाता है।

हाल ही में हुए प्रयोगों और परीक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रोगों की जड़ शरीर में नहीं मनुष्य के दूषित मन में है। अमेरिका में रोगियों का मनोविश्लेषण करने के बाद यह पाया गया कि यों तो अधिकांश रोगी मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ थे, किंतु पेट के मरीज शत्-प्रतिशत रूप से दूषित मनोविकारों वाले व्यक्ति थे। डॉ० कैनन ने जिनकी अध्यक्षता में अमेरिका के डॉक्टरों और मनश्चिकित्सकों ने यह अध्ययन किया, लिखा है कि आमाशय का सीधा संबंध मस्तिष्क के "आटोनेमिक" केंद्र से होता है। सिंपेथेटिक और पेरासिंपेथेटिक यह आटोनेमिक केंद्र के दो भाग हैं, जो पेट की क्रियाओं को संचालित करते हैं तथा पाचन रस उत्पन्न करते हैं। यदि व्यक्ति की मनःस्थिति अस्त-व्यस्त और आवेगग्रस्त होती है तो उसका पेट की क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और उसका पेट हमेशा के लिए खराब रहने लगता है।

डॉ० क्रेंस डोलमोर और डॉक्टर रॉओ द्वारा सन् १९२३ में की गयी शोधें शरीर और मन के संबंधों पर विस्तृत प्रकाश डालती हैं। उनको कहना है कि शरीर में कोई रोग उत्पन्न हो ही नहीं सकता— जब तक कि मनुष्य का मन स्वस्थ है। उन्होंने अपनी पुस्तक में दो फोटो भी प्रकाशित किये हैं। सत्तर वर्ष आयु वाले फोटो में चेहरे पर कोई झुर्री नहीं, कोई सिकुड़न नहीं और बुढ़ापे का कोई लक्षण नहीं है, जबकि पचास वर्ष की आयु वाले व्यक्ति का फोटो देखने से लगता है कि यह व्यक्ति बूढ़ा ही नहीं रोगी भी है, धँसी आँखें, पिचके गाल और सूखा चेहरा रुग्णता के प्रतीक नहीं तो क्या हैं ?

यह तो शरीर पर पड़ने वाले मन के प्रभाव का उल्लेख है। समाज में भी रोग, शोक, संहार, युद्ध, दंगे और लड़ाई-झगड़े, दूषित मनःस्थिति और विकृत विचारों वाले व्यक्तियों के कारण ही उत्पन्न होते हैं। जितने भी युद्ध और नरसंहार हुए उनके कारण प्रायः ऐसी मनःस्थिति के व्यक्ति ही होंगे। विकृत मनःस्थिति किस प्रकार के अनर्थ उत्पन्न करती है, उसका ताजा उदाहरण द्वितीय विश्वयुद्ध है। जिसमें दो करोड़ से भी अधिक व्यक्ति मारे गये। एक व्यक्ति की क्रूरता, हिंस्रता और अहंवादिता के कारण ही संसार के लाखों लोग अकाल युद्ध के गाल में काल-कवलित हुए और एक व्यक्ति की परिष्कृत, शुद्ध सात्विक मनःस्थिति का प्रभाव देखना हो तो वह महात्मा गाँधी, अब्राहिम लिंकन, मार्टिन लूथरकिंग आदि महापुरुषों के रूप में देखा जा सकता है, जिन्होंने अकेले ही अपने समाज व संसार में महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तन प्रस्तुत किये।

आणविक शक्ति के सदुपयोग और विध्वंस प्रयोगों की तुलना मनःशक्ति से की जा सकती है। संसार में सूखते जा रहे ऊर्जा स्रोतों के पूरी तरह चुक जाने के बाद वैज्ञानिकों की आँखें अणुशक्ति की संभावनाओं पर ही टिकी हुई हैं। अणुशक्ति का विध्वंसकारी रूप कितना भयावह है ? यह संसार पिछले विश्व युद्ध में देख ही चुका है और अब जबकि उस क्षेत्र में विकसित तकनीक पैदा कर ली गयी है, तब तो कहा जा रहा है कि दो-पाँच बम ही इस सारी पृथ्वी का जीवन नष्ट करने के लिए पर्याप्त होंगे।

मन की शक्ति अणुशक्ति से किसी प्रकार भी कम नहीं है बल्कि उससे अधिक ही समर्थ और प्रचंड है। इतिहास पुराणों में वर्णित शाप और वरदान की घटनाएँ इसी मनःशक्ति के विध्वंस और सृजन उपयोगों के उदाहरण हैं। इस तथ्य को भारतीय तत्त्वदर्शियों ने बहुत पहले ही लिख दिया है—**"मनःमातस देवी चतुर्वर्ग प्रदायकम्"**—अर्थात् मन की शक्ति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दिलाने वाली सभी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं।

❑ ❑

विस्मय विमुग्धकारी मस्तिष्क संस्थान

●

जीवित रहने के लिए आवश्यक क्रियाकलापों का प्रत्यक्ष संचालन यों विभिन्न अंग-प्रत्यंगों द्वारा होता है, पर उसका मूलभूत आधार मस्तिष्क की संचार प्रणाली है। अचेतन द्वारा शरीर की स्वसंचालित प्रणाली की साज-सँभाल रखी जाती है और चेतन द्वारा मन बुद्धि, चित्त, अहंकार के अंतःकरण चतुष्टय का संचालन होता है। मस्तिष्क की स्थिति के अनुरूप व्यक्तित्व का निर्माण होता है और प्रगति का पथ प्रशस्त होता है। सोचने की विशेषता ने ही मनुष्य को क्रमशः समुन्नत करते हुए इस स्थिति तक पहुँचाया है, जहाँ वह आज है। विज्ञान, शिल्प, दर्शन, अध्यात्म, कला, शिक्षा, चिकित्सा आदि ज्ञान की अगणित धाराएँ ही वे विभूतियाँ हैं, जिनका संग्रह करके, मनुष्य सामान्य न रहकर असामान्य बनता है। अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य जितना विकसित एवं साधन संपन्न दीखता है, उसे मस्तिष्कीय विकास का चमत्कार, प्रतिफल ही कहना चाहिए।

मानवी चेतना की रहस्यमय परतें यदि समझी जा सकें और समुन्नत की जा सकें तो निश्चय ही उसे अत्यंत उत्कृष्ट कोटि की जीवन सफलता कहा जायेगा। भौतिक विज्ञान स्थूल जगत् में बिखरी हुई शक्ति को देखकर चकित है और उसमें से बहुत कुछ करतलगत करने के लिए लालायित है।

सामान्य के भीतर जो असामान्य छिपा पड़ा है, उसे अब अधिक अच्छी तरह समझा जाने लगा है। उदाहरण के लिए, सूर्य को ही लें, वह गर्मी और रोशनी देने वाला, रोज उगने और डूबने वाला छोटा-सा अग्नि पिंड मात्र है, पर गंभीरतापूर्वक पता लगाने से शक्ति का असीम भांडागार सिद्ध होता है।

सूर्य के मध्य भाग में ५०००००० डिग्री सेंटीग्रेड गर्मी भरी पड़ी है। इस महाशक्ति का २०००००वाँ हिस्सा ही वह प्रकृति के

विकास, विनाश और संतुलन में काम लेता है। शेष भांडागार शायद इसलिए सुरक्षित है कि कोई उपयुक्त पात्र आये और किसी ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति के लिए शक्ति की आवश्यकता अनुभव करे, तो उसे इतनी शक्ति दी जा सके, जिससे वह कैसे भी ध्वंस या निर्माणकारी कार्यक्रम सुभीते से चला सके।

इस शक्ति भंडार की तुलना में मानव उपार्जित समस्त साधन इतने स्वल्प हैं, जितना कि समुद्र की तुलना में एक बूँद। सूर्य की शक्ति को यदि प्रयोग में लाया जाना संभव हो सके तो मनुष्य सर्वशक्तिमान् का पद पा सकता है। मनुष्य का अपना शरीर भी कुछ कम विचित्र विलक्षण नहीं है। शरीरशास्त्रियों का मत है कि कोश स्थित गुणसूत्र (क्रोमोसोम) और संस्कार सूत्र (जीन्स) में वह सबकी सब शारीरिक और मानसिक लक्षण और विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं, जो आगे चलकर मनुष्य शरीर में परिपक्व होने वाली होती हैं।

बच्चे की आकृति-प्रकृति का सारा ढाँचा इन नगण्य से घटकों में छिपा है, यह आश्चर्य की बात है, पर अनेक प्रमाण अब इन तथ्यों की निरंतर पुष्टि कर रहे हैं।

समीपवर्ती विचित्रताओं में सबसे बड़ा है, मस्तिष्क की टोकरी में रखा हुआ सूक्ष्म शक्तियों और दिव्य क्षमताओं का भांडागार। पर कठिनाई यह है कि जिस प्रकार अपनी आँखों से अपनी आँखों को देख सकना कठिन है और अपने ही रक्त में चल रही हलचलों को जान पाना दुःरूह है, उसी प्रकार मस्तिष्क को समझना तो कठिन है ही; उससे भी कठिन यह है कि मानसिक चेतना पर नियंत्रण कैसे किया जाए ? यदि वैसा संभव हो सके तो शक्ति का लगभग इतना ही बड़ा स्रोत हाथ लग सकता है, जितना कि बाह्य जगत् के दृश्यमान सूर्य में सन्निहित है।

अधिक से अधिक तीन पौंड भार की खोपड़ी में वैज्ञानिकों की जाँच के अनुसार लगभग १४०००५००००० (चौदह अरब पाँच लाख) ज्ञान-तंतु बैठे हुए हैं। सरकारी कार्यालयों में काम करने वाले

क्लर्कों, कर्मचारियों और पदाधिकारियों की तरह यह ज्ञान-तंतु ही संपूर्ण शरीर समाज का रेकार्ड—लेखा-जोखा रखते हैं और एक शुभचिंतक अभिभावक की भाँति शरीर के समस्त अंग-प्रत्यंगों की सुरक्षा और भरण-पोषण का ध्यान रखते हैं। मस्तिष्क से विलक्षण मशीन और रहस्यपूर्ण प्रयोगशाला इस संसार में दूसरी नहीं। संभवतः भगवान् ने जितना जटिल संसार बनाया है, मस्तिष्क को भी उतना ही जटिल बनाकर, वह मनुष्य रूप में इस तरह प्रकट हो गया, जिस प्रकार विचित्र दृश्य वाले विराट् जगत् में वह विभिन्न क्रीड़ाएँ किया करता है।

भौतिक दृष्टि से अब तक मस्तिष्क के संबंध में प्राप्त कुल में से १७ प्रतिशत जानकारी में से अगले भाग (फोरब्रेन) के संबंध में तो अब तक कुल ३ प्रतिशत जानकारी प्राप्त की जा सकी है, शेष ६७ प्रतिशत भाग अभी अविज्ञात ही है।

सुपीरियर एंड इन्फीरियर सेरेब्रल पेडेकल्स के बीच अवस्थित मस्तिष्क में ही संपूर्ण दृश्य केंद्र (आप्टिक एरिया), अनुभूति केंद्र (सेंसरी एरिया) बने हैं। मस्तिष्क से निकलने वाली सभी नसों के नाभिक (न्यूक्लियाई) यहीं पर हैं। यहाँ एक अद्‌भुत संसार छिपा है। पर उसे यंत्रों से नहीं, भावनाओं से, ध्यान से ही देखा जा सकता है। उसकी जानकारी चित्तवृत्तियों के निरोध, एकाग्रता, आध्यात्मिकता के समन्वय से ही की जा सकती है, अन्य कोई उपाय शायद ही संभव हो।

यह बात तो डॉक्टर और एनाटामिस्ट्स भी जानते हैं कि दोनों भौंहों के सीध में जहाँ दोनों आँखों की नसें (आप्टिकनर्व्स) मिलकर आप्टिक कैजमा बनाती हैं, उस स्थान पर 'पिट्यूटरी' नाम की एक ग्रंथि (ग्लैंड) पाई जाती है, यहीं से सारे शरीर का नियंत्रण करने वाले क्रोध, भय, चिंता, प्रसन्नता आदि के हारमोन्स निकलते हैं। इसका सारे शरीर में नियंत्रण है, इसलिये इसे स्वामी ग्रंथि (मास्टर ग्लैंड) कहते हैं। भारतीय इसे ही 'आज्ञा-चक्र' कहते हैं। पर दाहिने-बाएँ दो बल्व (आल फैक्ट्री वॉल्व्स) लगे होते हैं। इनकी

सूक्ष्म रचना के बारे में तो वैज्ञानिक नहीं जान पाये, किंतु वे यह मानते हैं कि इस स्थान की आंतरिक जानकारी मिलने से मस्तिष्क और शरीर के सूक्ष्म अंतर्वर्ती रहस्यों का पता लगाया जा सकता है।

प्रसिद्ध जीवशास्त्री जेम्स ओल्डस के एक विद्यार्थी ने एक चूहे के मस्तिष्क में ऐसा प्रयोग करके दिखाया कि उसके मस्तिष्क के एक भाग को संकेत कर देने से वह अपना स्वभाव ही भूल गया और बच्चे की साइकिल का पाइडिल घुमाने लगा, उसे इसमें इतना आनंद आया कि उसने एक घंटे में कोई आठ सौ पाइडिल घुमाए, इस बीच उसके आगे मीठे भोजन का थाल भी रखा गया, जिसे खाना और सूँघना तो दूर ध्यान से देखा तक भी नहीं।

एक शरीर में भिन्न व्यक्तित्व का सन्निहित होना यह बताता है कि मनुष्य जीवन आत्म-विकास की एक कड़ी है, हमारी ज्ञानधाराएँ, हमारी चेतना शाश्वत है, उसे शुद्ध, पवित्र, बलवान् और आनंदपूर्ण बनाकर हम सदैव ही अच्छे जीवन का आनंद ले सकते हैं।

जो थोड़ी-सी घटनाएँ पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने चूहों, बंदरों पर प्रयोग करके देखीं, वह वस्तुतः हमारे सामने प्रतिदिन, प्रतिक्षण घटित होती रहती हैं। भारतीय योगियों ने हमें जप करना, प्रार्थना करना, सेवा, सहयोग और सहानुभूतिपूर्ण जीवन जीना सिखाया है, उसके पीछे उनकी आत्म-चेतना की गहनतम खोजें, प्रयोग और अनुभूतियाँ ही हैं, उन्होंने देखा था, हम जो भी हैं या जो कुछ रहे हैं, वह सब मस्तिष्क की रचना है। चोट लगती है पाँव में, अनुभव करता है मस्तिष्क रोती हैं आँखें दुःख करता है मस्तिष्क। पत्थर उठाते हैं हाथ, किंतु उसके लिए आदेश देता है मस्तिष्क। अंधकार होता है, हमारे शरीर से कोई वस्तु टकराती है, उसकी चिंता करता है मस्तिष्क, विश्लेषण करता है मस्तिष्क और फिर उससे बचने या उठा लेने की बात सोचना और आदेश भी देना यह सब मस्तिष्क के ही कार्य हैं, इसलिये उन्होंने मस्तिष्क की ही खोज करने का निश्चय किया।

अभी तक खोजों के अनुसार यह मानने के लिए पर्याप्त आधार मिल गये हैं कि मनुष्य जीवन के संपूर्ण सुख-दुःख, ईर्ष्या-द्वेष, काम-क्रोध, तृष्णा-संयम, भय-निर्भयता, स्वार्थ-परमार्थ आदि सभी गुण-अवगुण यहीं से संबंधित हैं। मस्तिष्कीय शक्ति का किसी भी दिशा में विकास करके कैसी भी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

प्राचीन काल में योग विज्ञान ने मस्तिष्कीय शक्ति को अभीष्ट दिशा में विकसित करने की पद्धति विकसित कर ली थी और उस विज्ञान से लाभ भी उठाया गया है। आधुनिक विज्ञान भी अपने ढंग से क ख ग से आरंभ कर इस दिशा में प्रयोग अनुसंधान कर रहा है। फ्रांसीसी वैज्ञानिक प्रो० डेलगाडो ने एक बार बाल से भी अधिक सूक्ष्म विद्युदग्र (इलेक्ट्रोड) बनाया और उसे लूलू जंतु की कनपटी में स्पर्श कराया। लूलू बड़ा डरपोक जानवर होता है, फर विद्युत् द्वारा मस्तिष्क में एक विशेष भाग को उत्तेजित करते ही उसका सारा भय निर्भयता में बदल गया और वह इस तरह से कार्य करने लगा जैसे वह कोई शेर हो। उससे अधिक बलवान् और खूँखार जानवर उसके सामने लाये गये, पर वह तनिक भी नहीं डरा वरन् उल्टे उन्हें धमकाकर यह सिद्ध कर दिया, भय जीवन की स्वाभाविकता नहीं है वरन् यह मस्तिष्क की एक अवस्था मात्र है। हम किसी भी गुण को अपने आप में एक नये सिरे से पैदा करके उसकी पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रयोग से मानसिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों को यह सोचने का अवसर मिला कि कमजोरी अपनी भूल है, वस्तुतः दुःख और कमजोरियाँ मनुष्य के लिए हैं ही नहीं, यदि अपने मस्तिष्क के गुणपरक, साहसपरक, सुख और आनंदपरक भाग को जाग्रत् रखें तो हम अपने ही आनंद से आनंदित रह सकते हैं वरन् संसार में और भी जो सर्वत्र गुण और आनंद के कण बिखरे पड़े हैं, उनसे भी खींच-खींचकर गुण और आनंद की मात्रा बढ़ाकर सुख-शांति और समृद्धि का जीवन जी सकते हैं। भय, बुराई और निराशाएँ

यदि अपने ही अंदर से उत्तेजित हो रही हों तो प्राकृतिक नियम के अनुसार और भी सब जगह से दुःख ही दुःख दौड़ता चला आयेगा और जीवन में जो थोड़ी-सी शांति और प्रसन्नता थी, उसे भी नष्ट कर डालेगा।

प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक प्रोफेसर एनोरवीर ने कई प्रयोग करके यह दिखाया कि दुःख या सुख मस्तिष्क से स्रावित होकर रक्त में मिल जाने वाले दो विभिन्न प्रकार के रस हैं और यह मनुष्य की इच्छा, स्वभाव और अभ्यास पर निर्भर है कि वह अपने मस्तिष्क के किस स्रोत का स्राव करता है। उन्होंने बताया कि मस्तिष्क की अत्यंत गहराई में ऐसे सूक्ष्म संस्थान हैं, जिनका संबंध मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी को जोड़ने वाले 'रेटिक्युलर फार्मेशन' से है। यहीं से कुछ ग्रंथियों का स्राव होता रहता है। कुछ ग्रंथियों से अच्छे मधुर रस का स्राव होता है, जिससे प्रसन्नता, प्रफुल्लता, मुस्कान, हँसी, मृदुलता, शिष्टता, सौम्यता आदि गुण फूटते रहते हैं और अच्छा सा लगता है और दूसरे प्रकार के रस में बुराई के अंश जुड़े रहते हैं, उससे मनुष्य चिंतित, दुःखी, निराश और उद्विग्न बना रहता है। डॉ० एनोरवीन ने यह बताया कि इन ग्रंथियों का स्राव अपने आप नहीं होता वरन् यह सब विचारधाराओं से होता है, अर्थात् हमारे अच्छे-बुरे विचार और भावनाएँ ही सुख-दुःख की जन्मदाता हैं।

○ मस्तिष्क एक विद्युत् बैटरी

रिवोन्यूक्लिक एसिड (आर० एन० ए०) नामक रसायन मस्तिष्कीय चेतना का आधार स्तंभ ठहराया गया है। स्वीडन के डॉ० हाल्गार हाइडन के प्रयोगों में इस रसायन की मात्रा विभिन्न चेतना परतों में घटा-बढ़ाकर प्राणियों के सोचने के तरीके को बदलने में अच्छी सफलता प्राप्त की है।

टैक्सास विश्वविद्यालय के डॉ० जेम्स मैक्कॉनल और डॉ० राबर्ट थांपसन ने मस्तिष्कीय संरचना की दृष्टि से—पानी में

पाये जाने वाले आधे इंच के चपटी किस्म के—प्लेनेरिया कीड़े को अधिक उपयुक्त पाया है और उसे इन प्रयोगों के लिए चुना है। इसकी मस्तिष्कीय कोशिकाओं की उखाड़-पछाड़ करके वे यह प्रयत्न कर रहे हैं कि उसकी आदतें नये ढाँचे में ढल जाएँ और फिर उसी नई रीति-नीति की अभ्यस्त उसकी भावी पीढ़ियाँ बन जाएँ। डॉ० डी० एलवर्ट ने चूहों की एक ऐसी जाति पैदा की है, जिसकी शक्ल अपने पूर्वजों की ही तरह है, पर उनका सोचना और करना बिल्कुल नये ढंग का है।

मस्तिष्कीय संरचना का जितना गहरा अध्ययन किया गया है, उसके आधार पर यह पता चलता जा रहा है कि कपाल के भीतर भरी मज्जा के अंतर्गत सूक्ष्म घटक, जितने अधिक सूक्ष्म और सक्षम होते हैं, उसी अनुपात से बुद्धिमत्ता का विकास होता है। यह घटक अगणित वर्गों के हैं और उन्हीं के वर्ग विकास पर मानसिक गतिविधियों का निर्माण निर्धारण होता है।

यह समझा जाता है कि विकसित प्राणियों का मस्तिष्क बड़ा होता है। पर बात ऐसी नहीं है। मस्तिष्क का भार भी शरीर के वजन और अनुपात पर निर्भर है। ह्वेल का मस्तिष्क ७००० ग्राम., हाथी का ५२००, डाल्फिन का १८००, आदमी का १३५०, घोड़े का ६५०, गेंडे का ६००, गोरिल्ला का ५००, कुत्ते का १३०, बिल्ली का ३० ग्राम होता है, इस आधार पर इन प्राणियों की समझदारी का लेखा-जोखा नहीं लिया जा सकता।

समझदारी का मस्तिष्क के वजन से सीधा संबंध नहीं, वरन् इस बात से है कि उनमें 'न्यूरान' कितने हैं और वे परस्पर कितनी सघनतापूर्वक संबद्ध होकर एक-दूसरे के पूरक बनते हैं ? मानव मस्तिष्क में प्रायः १४ अरब न्यूरान होते हैं और उनकी संरचना ऐसी है, जिनके अनुसार हर न्यूरान अपना निर्धारित कार्य ही नहीं निपटाता वरन् दूसरे न्यूरानों के क्रियाकलाप में भी भारी योगदान करता है; मानवी बुद्धिमत्ता का रहस्य इसी में है।

मनुष्य की बुद्धिमत्ता पिछले दस हजार वर्षों में प्रायः सौ गुनी अधिक विकसित हुई है। यदि भार और विस्तार से समझदारी का संबंध होता तो उसका सिर उसी अनुपात से बड़ा होता और आदमी का सिर शेष समस्त शरीर की तुलना में कई गुना अधिक बड़ा दिखाई देता।

डॉ० कैमरान के अनुसार मस्तिष्कीय कणों का मध्यवर्ती न्यूक्लिक एसिड विद्युत् संवेग का उत्पादक एवं नियंत्रणकर्त्ता है। रासायनिक बैटरी का यह एसिड ही मस्तिष्क में विभिन्न स्तर के संवेदन संवेग उत्पन्न करता है। इस अम्ल की स्थिति पर मानसिक स्तर बहुत कुछ अवलंबित रहता है, इसके लिए कुछ ही दिन पूर्व एक मैग्निशियम पेन्सलीन आविष्कृत हुई है। केन्सास विश्वविद्यालय के रसायनवेत्ताओं ने इसी प्रयोजन के लिए कुछ प्रोटीन ढूँढ़ निकाले हैं और उनका उपयोग मस्तिष्कीय क्षमता को संतुलित एवं विकसित करने के लिए किया है।

कनाडा के मनःतत्त्व विशेषज्ञ डॉ० डब्ल्यू० जी० पेन फील्ड ऐसे विद्युदग्र (इलेक्ट्रोड) खोजने में समर्थ हो गये हैं, जिनका अमुक स्थान के अमुक कोशिकाओं के साथ संबंध जोड़ देने पर मनुष्य भूतकाल की घटनाओं को आँखों के आगे मूर्तिमान् होने की पुनरावृत्ति देख सकता है। इसी प्रकार भूतकाल के किन्हीं संवाद-परिसंवादों की अभी-अभी के घटनाक्रम की तरह अनुभव कर सकता है, जिसे मैस्मरेजम, हिप्नोटिज्म के आधार पर अतींद्रिय या अतिमानस के स्तर पर अनुभव किया जा सकता है और प्रयोक्ता अपनी मनमर्जी का चिंतन एवं दृश्य प्रयोगी के मस्तिष्क को अनुभव करा सकता है। वह प्रयोग अब पुराने पड़ गये, क्योंकि उसके लिए प्रयोक्ता को स्वयं कई तरह के अभ्यास करने पड़ते हैं। प्रयोगों को संवेदनशीलों में से चुनना पड़ता है, फिर भी तकनीकी गलतियों से कई बार पूरी या आधी सफलता ही मिलती थी। अब वह कार्य इलेक्ट्रोड की सहायता से यांत्रिक उपकरण द्वारा सुनिश्चित कर दिया है। एक सीमित मात्रा में विद्युत् तरंगें

मस्तिष्क में प्रवेश कराके मनुष्य को थकान एवं अनिद्रा की पीड़ा से मुक्त कराया जा सकेगा। इतना ही नहीं उसे इतना मूर्च्छित भी किया जा सकेगा कि आपरेशन का कार्य भी आसानी से हो सके।

जीवशास्त्री जेम्स ओल्डस ने मस्तिष्क पर आंशिक नियंत्रण करके चूहों को, बिल्ली से डरने की भावना से मुक्त कर दिया। वे बिल्लियों को अपनी सजातीय मानने लगे और बिना डरे उसकी पीठ पर चढ़ने लगे।

फ्रांसीसी वैज्ञानिक प्रो० देल्गादो का कथन है कि आदतों और अभ्यासों की उसी तरह काट-छाँट की जा सकती है, जैसे फोड़े-फुंसियों की। किसी की नसों में रक्त चढ़ाने की तरह उसके मस्तिष्क में अच्छी आदतों का भी बाहर से प्रवेश करा सकना भी अगले दिनों संभव हो जायेगा।

मस्तिष्कीय चेतना को उलटा अथवा बदला जा सकता है, इस संबंध में पिछले काफी दिनों से खोजबीन चल रही है। मस्तिष्क में किस स्थान पर किस प्रकार की क्षमता का निवास है, यह बहुत कुछ जान लिया है और यह प्रयोग सफलतापूर्वक संपन्न किया है कि मस्तिष्क के किसी गर्त में पड़ी हुई किन्हीं विकृतियों को बिजली का झटका देकर जगाया जाय और मनुष्य यह अनुभव करे मानो वह घटना अतीत की नहीं अभी-अभी की है।

स्नायु विज्ञानी कार्ल लैसले ने यह पता लगाया है कि मस्तिष्कीय कणों के किस पर्त पर कितना विद्युत् प्रवाह जारी करने से किस स्तर की पुरानी स्मृति जाग्रत् हो सकती है ? मैकगिल विश्वविद्यालय मांट्रियल (कनाडा) के डॉ० विल्डरपेनफील्ड ने दृश्य ध्वनि और विचार का संबंध स्थापित करते हुए यह संभावना व्यक्त की है कि लोगों के मस्तिष्कों को इच्छानुसार चिंतन करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। कैलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी के डॉ० रोगस्पेरी ने चिर संचित आदतों को भुला देने और अनायास ही नये अभ्यास के आदी बना देने में सफलता प्राप्त की है।

डॉ० जे० वी० ल्यूको की खोजों ने यह तथ्य प्रस्तुत किया है कि मस्तिष्क स्वेच्छाचारी नहीं हैं और उस पर मनुष्य का अपना अधिकार सीमित नहीं है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा मस्तिष्क की दिशा उल्टी जा सकती है और आज एक तरह सोचने वाला व्यक्ति को कल दूसरी तरह सोचने के लिए विवश किया जा सकता है। न्यूरोन्स की सिनेप्टिक हलचलों में हेर-फेर करके मानसिक स्तर का हेर-फेर किया जा सकता है। इसके लिए नियत स्थान पर उपयुक्त मात्रा में विद्युत् प्रवाह पहुँचा देने का कौशल हाथ में आ जाने से बहुत काम चल सकता है। डॉ० जे० वी० ल्यूको ने तिलचट्टे जैसे जीवों में ऐसी नई आदतें डालीं जो उनके पूर्वजों में भी नहीं थीं। बिल्ली और चूहे की दुश्मनी पुरानी है, पर मस्तिष्कीय परिवर्तनों से यह संभव हो गया कि वह परंपरागत शत्रुता समाप्त हो जाए और वे दोनों हिल-मिलकर रहने लगें।

समझाने-बुझाने के झंझट में पड़ने की अपेक्षा किसी को अभीष्ट चिंतन के लिए बाध्य करना और मंद बुद्धि समझे जाने वाले मस्तिष्कों को प्रतिभासंपन्न बनाना, उपचार पद्धति के सहारे भी संभव हो सकता है। विज्ञानवेत्ताओं का यह विश्वास अब दिन-प्रतिदिन प्रबल होता जा रहा है।

मस्तिष्कीय कोशिकाओं का परस्पर एक-दूसरे के साथ सघन संबंध है। इस संबंध सूत्र को जोड़ने का काम एक विद्युत् प्रवाह करता है। यह प्रवाह मनःचेतना की इच्छानुसार विभिन्न परतों में घूम जाता है और अरबों कोशिकाओं में बिखरी हुई क्षमताओं एवं स्मृतियों में से अपनी अभीष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप तथ्यों को ढूँढ़ लाता है। यह कोशिकाओं के मध्य संबंध सूत्र जोड़ने वाला विद्युत् प्रवाह यदि मंद हो या अवरुद्ध होकर चले तो फिर मनुष्य मंद बुद्धि, दीर्घसूत्री अथवा भुलक्कड़ स्तर का बन जायेगा। यह प्रवाह जितना द्रुतगामी, सुव्यवस्थित एवं संवेदनशील होगा, उसी अनुपात से मनुष्य की बुद्धिमत्ता एवं कुशलता बढ़ेगी।

मस्तिष्क को रीढ़ की हड्डी से जोड़ने वाले रेटिक्युलर फार्मेशन की हरकतों को समझना और उसे प्रवाहित करना जब जितनी मात्रा में संभव होता जायेगा, उसी अनुपात से मनुष्य को कृत्रिम रीति से हर्ष, शोक की अनुभूतियों से आच्छादित किया जा सकेगा, तब घटनाओं या उपलब्धियों के इंतजार में किसी को प्रसन्नता से वंचित नहीं रहना पड़ेगा। अमुक रसायन या अमुक इलेक्ट्रोड ही किसी को धन कुबेर, सत्ताधारी सम्राट् अथवा सिद्ध योगी जैसी प्रचुर प्रसन्नता सहज ही प्रदान कर दिया करेगी।

रूसी वैज्ञानिक प्रो० एनाखीन ऐसी दवा विनिर्मित करने में सफल हो गये हैं, जो पीड़ित अंगों में होने वाले दर्द के कष्ट से रोगी को बचा लेगी। इस औषधि का नाम है—एमीनोजाइन। यह रेटिक्युलर फार्मेशन में स्थित पीड़ा संवेदन केंद्र को जकड़ लेती है, फिर भले ही कोई मांस काटता रहे, उससे किसी प्रकार के दर्द की अनुभूति न होगी। बिना निद्रा लाये इस प्रकार संज्ञा शून्यता उत्पन्न करने का यह अपने ढंग का अनोखा प्रयोग है। एड्रेनेलीन वर्ग की औषधियों का अगले दिनों ताँता लगने वाला है। सोचा यह जा रहा है कि प्रसव से लेकर सिर दर्द, साइटिका, उदरशूल जैसी व्यथाओं के रहते हुए भी बिना कष्ट सहे लोग अपना काम निपटाते रहें और जब आपरेशन की जरूरत पड़े तो बिना कष्ट की अनुभूति सहे—वह काम भी हजामत बनाने की तरह सरलतापूर्वक निपट जाया करे।

मस्तिष्कीय नियंत्रण के सूत्र जैसे-जैसे हाथ में आते जा रहे हैं वैसे-वैसे उसके लाखों फायदों का गुणगान बढ़ा-चढ़ाकर किया जाने लगा है कि औषधि उपचार, अंगों का प्रत्यारोपण, प्लास्टिक सर्जरी, विद्युत् आघात, विकरण आदि के प्रयोगों द्वारा जिस प्रकार शारीरिक रुग्णता से निपटने के लिए प्रगति हो रही है, उसी प्रकार मानसिक रोगों से छुटकारा पाया जा सकेगा, मनोव्यथाओं से छुट्टी मिलेगी। इतना ही नहीं मन के न मानने जैसा अवरोध भी न रहेगा, उसे जैसे ढाला, मोड़ा जाना है, उसके लिए किसी अविज्ञात प्रेरणा

के प्रवाह में बहता हुआ सहज ही तैयार, तत्पर हो जायेगा। तब अनुशासन के लिए नियम प्रतिबंध न लगाने पड़ेंगे वरन् कुछ उपचार द्वारा ही यह सब झंझट निपटा लिया जाया करेगा।

देखने-सुनने में यह सब्जबाग बहुत ही अच्छा लगता है, पर इसमें यह भयानक संकट छिपा बैठा है कि चंद सत्ताधारी इन उपचारों को हस्तगत करके, प्रजा को अमुक उपचार लेने के लिए उसी प्रकार बाध्य कर दें, जिस प्रकार लड़ाई के दिनों में सैनिक भर्ती को अनिवार्य कर दिया जाता है। ऐसी दशा में जन साधारण स्वतंत्र चेतना से वंचित होकर चंद लोगों के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रहना होगा। मस्तिष्कीय चेतना को बाह्य पदार्थों और उपकरणों से प्रभावित करने की दिशा में विज्ञान दिन-दिन आगे बढ़ता जा रहा है और यह संभावना परिलक्षित हो रही है कि स्वतंत्र चिंतन का अगले दिनों अस्तित्व ही रह न जायेगा। विज्ञान इस फिराक में है कि न केवल भौतिक पदार्थों की सुख-सुविधाओं के लिए मनुष्य को लुभाया, ललचाया अथवा पराश्रित बनाया जाए वरन् इससे भी एक कदम आगे बढ़कर यह किया जाय कि उसका 'अपना' नामक कोई स्तर ही न रहे। समर्थ लोगों के इशारे पर चल रहा विज्ञान तब मनुष्य समूह का उपयोग मक्खी-मच्छरों की तरह करेगा और न केवल इनका शरीर वरन् मन भी किन्हीं क्रिया-कुशल हाथों में होगा। भेड़ों के झुंड को गड़रिये हाँकते हैं और उनके दूध, ऊन, खाल, मांस, गोबर का इच्छानुसार उपयोग करते हैं। तैयारी इस बात की, की जा रही है कि जन साधारण की शारीरिक ही नहीं मानसिक स्थिति आत्मसमर्पण जैसी हो जाए, तब विज्ञान का देवता हर किसी के चिंतन और कर्तव्य को अपनी मर्जी के अनुसार ढाला करेगा और कठपुतली की तरह लोग स्वेच्छापूर्वक नाचा करेगा। इस पराधीनता के पाश में एक बार फँस जाने के बाद फिर किसी के लिए उससे निकल सकना ही संभव न रहेगा। आत्म विस्मृति के गर्त में गिर जाने के बाद फिर उद्धार की आशा किस आधार पर की जा सकेगी ? अचेतन को प्रभावित करने की दिशा

में कितने ही वैज्ञानिक प्रयोग हो रहे हैं और उनमें सफलताएँ भी मिल रही हैं।

डॉ० डेलगाडो ने अपने कथन को प्रामाणित करने के लिए कई सार्वजनिक प्रयोग करके भी दिखाये। अली नाम के एक बंदर को केला खाने के लिए दिया गया। जब वह केला खा रहा था, तब डॉ० डेलगाडो ने 'इलेक्ट्रोएन्सीफैलोग्राफ' के द्वारा बंदर के मस्तिष्क को संदेश दिया कि केला खाने की अपेक्षा भूखा रहना चाहिए तो बंदर ने भूखा होते भी केला फेंक दिया। 'इलेक्ट्रोएन्सीफैलोग्राफ' एक ऐसा यंत्र है, जिसमें विभिन्न क्रियाओं के समय मस्तिष्क में उठने वाली भाव-तरंगों को अंकित कर लिया गया है। किसी भी प्रकार की भाव-तरंग को विद्युत् शक्ति द्वारा तीव्र कर देते हैं तो मस्तिष्क के शेष सब भाव दब जाते हैं और वह एक ही भाव तीव्र हो उठने से मस्तिष्क वही काम करने लगता है।

डॉ० डेलगाडो ने इस बात को अत्यंत खतरनाक प्रयोग द्वारा भी सिद्ध करके दिखाया। एक दिन उन्होंने इस प्रयोग की सार्वजनिक घोषणा कर दी। हजारों लोग एकत्रित हुए। सिर पर इलेक्ट्राड जड़े हुए दो खूँख्वार साँड लाये गये। इलेक्ट्रोड एक प्रकार का एरियल है, जो रेडियो ट्रांसमीटर द्वारा छोड़ी गई तरंगों को पकड़ लेता है। जब दोनों साँड मैदान में आए तो उस समय की भयंकरता देखते ही बनती थी, लगता था दोनों साँड डेलगाडो का कचूमर निकाल देंगे, पर वे जैसे ही डेलगाडो के पास पहुँचे उन्होंने अपने यंत्र से संदेश भेजा कि युद्ध करने की अपेक्षा शांत रहना अच्छा है, तो फुसकारते हुए दोनों साँड ऐसे प्रेम से खड़े हो गये जैसे दो बकरियाँ खड़ी हों। उन्होंने कई ऐसे प्रयोग करके रोगियों को भी अच्छा किया।

टैक्सास विश्वविद्यालय के राबर्ट थांपसन और जेम्स मैक कौनेल नामक वैज्ञानिकों ने प्लेनेरिया नामक जीव पर परीक्षण करके यह सिद्ध किया कि विद्युत् उपकरणों की सहायता से मस्तिष्कीय क्षमता को घटाया और बढ़ाया जा सकता है।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डॉ० एलन जेकवसन ने प्रशिक्षित चूहों के मस्तिष्क में से आर० एन० ए० रसायन निकालकर अनाड़ी चूहों के मस्तिष्क में पहुँचाया तो अनाड़ी भी प्रशिक्षितों की तरह बुद्धिमान् बन गये।

प्रगति जिस चरण में पहुँची है, उसे देखते हुए मिशिगन विश्वविद्यालय के इस संदर्भ में संलग्न विज्ञानी डॉ० ओटोशियल ने घोषणा की है कि अब हमारे हाथ में मानव मस्तिष्क को नियंत्रित करने की शक्ति आ गयी है और आशा की जानी चाहिए कि उसका प्रयोग केवल अच्छाई के लिए ही होगा, किंतु साथ ही इस खतरे को भी ध्यान में रखना होगा कि इस नव उपार्जित शक्ति का प्रयोग निजी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं राष्ट्रीय विस्तारवाद के लिए भी किया जा सकता है। यदि ऐसा किया गया तो यह आविष्कार संसार का सबसे अधिक विघातक अस्त्र सिद्ध होगा।

○ अभिशाप भी संभव

स्वतंत्र चिंतन की विशेषता को नियंत्रित करने के उपाय यदि सचमुच हाथ लग जाएँ, तब फिर यह संभव हो सकेगा कि उस विज्ञान का ज्ञाता अपनी इच्छित दिशा में गतिशील होने की प्रेरणा अगणित मनुष्यों को दे सके। इस उपलब्धि में जहाँ सुधार की संभावनाएँ हैं, वहाँ यह खतरा भी है कि कोई अधिनायक समस्त प्रजा पर अपनी इच्छित विचारधारा थोपकर उसे सदा के लिए वशवर्ती बना ले।

मनोविज्ञान रसायनों के विशेषज्ञ डॉ० स्किनर का कथन है कि वह दिन दूर नहीं जब इस चौदह करोड़ तंत्रिका कोशिकाओं वाले तीन पौंड वजन के अद्‌भुत ब्रह्मांड-मानवीय मस्तिष्क के दिये हुए एक से एक अद्‌भुत रहस्य को बहुत कुछ समझ लिया जायेगा और उस पर रसायनों तथा विद्युत् धाराओं के प्रयोग द्वारा आधिपत्य स्थापित किया जा सकेगा। यह सफलता अब तक की समस्त वैज्ञानिक उपलब्धियों से बढ़कर होगी, क्योंकि अन्य

सफलताएँ तो केवल मनुष्य के लिए सुविधा ही उत्पन्न करती हैं, पर मस्तिष्कीय नियंत्रण से तो अपने आपको ही अभीष्ट स्थिति में बदल लेना संभव हो जायेगा, तब देवता या असुर किसी भी रूप में मनुष्य की सत्ता को बदला जा सकेगा।

जर्मनी के मस्तिष्क विद्या विज्ञानी डॉ० ऐलन जैक बसन और उनके सहयोगी मार्क रोजन वर्ग एक प्रयोग कर रहे हैं कि क्या किसी सुविकसित्त मस्तिष्क की प्रतिभा को स्वल्प विकसित मस्तिष्क में परिवर्तन किया जा सकता है ? क्या समर्थ मस्तिष्क का लाभ अल्प विकसित मस्तिष्क को अनुदान के रूप में प्राप्त हो सकता है ?

शिक्षण की प्रणाली पुरानी है। शिक्षित व्यक्ति अशिक्षित व्यक्ति को पढ़ा-लिखाकर सुयोग्य बनाते हैं और मस्तिष्कीय क्षमता विकसित करते हैं। विद्यालयों में यही होता चला आया है।

चिकित्साशास्त्री, ब्राह्मी, आँवला, शतावर, असगंध, सर्पगंधा आदि औषधियों की सहायता से बुद्धि वृद्धि का उपाय करते हैं। मस्तिष्क रासायनिक तत्त्वों का सार लेकर इंजेक्शन द्वारा एक जीव से लेकर दूसरे के मस्तिष्क में प्रवेश करने का भी प्रयोग हुआ, पर वह कुछ अधिक सफल न हो सका। अन्य जाति के जीवों का विकसित मस्तिष्क सत्व अन्य जाति के जीवों का शरीर ग्रहण नहीं करता। कई बार तो उल्टी प्रतिक्रिया होने से उल्टी हानि होती है। फिर क्या उपाय किया जाए ? उसी जाति के जीव का मस्तिष्क उसी जाति के दूसरे जीव को पहुँचाएँ तो लाभ कुछ नहीं, क्योंकि उनकी संरचना प्रायः एक-सी होती है।

मस्तिष्क के तीन भाग मुख्य हैं—एक—समस्त क्रिया-प्रक्रियाओं का संचालक, दूसरा—मांसपेशियों का नियंत्रक, तीसरा—साँस लेने, भोजन पचाने आदि स्वसंचालित प्रक्रियाओं का विधायक। इन तीनों में वह भाग अधिक महत्त्वपूर्ण है, जो मन और बुद्धि को सँभालता है। इसी के विकास को मानसिक विकास माना जाता है। शेष मस्तिष्कीय क्रियाकलाप तो प्राणियों के शरीरों की स्थिति के अनुरूप अपना काम करते ही रहते हैं।

कुछ प्राणियों के मस्तिष्क सुई की नोंक जितने छोटे होते हैं। कुछ के बहुत बड़े। ह्वेल मछली का मस्तिष्क मनुष्य से भी बड़ा होता है। इतने बड़े शरीर की व्यवस्था बनाये रखने के लिए इतना बड़ा यंत्र होना भी चाहिए, पर उसमें भी बौद्धिक प्रतिभा वाला भाग अविकसित होता है।

प्राणिशास्त्री विचिस्टन और मनोविज्ञान शोधकर्त्ता वेलेस्कोप मानसिक विकास की बहुत कुछ संभावना इस बात पर संभव मानते हैं कि अविकसित मस्तिष्क वालों का सान्निध्य विकसित मस्तिष्क वालों के साथ रहे। सरकस के पशुओं के सिखाने में जहाँ सधाने की पद्धति कम कारगर सिद्ध होती है, वहाँ उनका बौद्धिक और भावनात्मक विकास बहुत कुछ पशु शिक्षक की स्थिति से जुड़ा रहता है। समीपता के कारण उनका सोचने का ढंग और भावना बहुत कुछ वैसी ही बनने लगती है।

राजाओं, सेनापतियों के घोड़े, हाथी उनका इशारा समझते थे और सम्मान करते थे। बिगड़े हुए हाथी को राजा स्वयं जाकर सँभाल लेते थे। राणा प्रताप, नैपोलियन, झाँसी की रानी के घोड़े मालिकों के इशारे ही नहीं उनकी इच्छा को भी समझते थे और उनका पालन करते थे। यह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का अल्प विकसित बुद्धि वाले घोड़े, हाथी आदि पशुओं पर पड़ा हुआ प्रत्यक्ष प्रभाव ही था।

मस्तिष्क में से एक प्रकार की गंध सरीखी विशेष चेतन क्षमता निरंतर उड़ती रहती है। समीप रहने वाले लोग उस विशेषता से प्रभावित होते हैं। व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली होगा—मस्तिष्क जितना विकसित होगा—उसका संपर्क क्षेत्र को प्रभावित करने वाला चुंबक भी उतना ही प्रभावशाली होगा। यदि तीव्र इच्छा और भावना के साथ इस शक्ति को किसी दूसरे की ओर प्रवाहित किया जाए तो उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। मनस्वी लोगों की समीपता से अल्प बुद्धि वालों का मस्तिष्कीय विकास होने लगता है, भले ही वह मंद गति से क्यों न हो रहा हो ?

इन नये वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा मनुष्य को जीवित "रोबोट" (यंत्र मानव) बनाया जा सकेगा। वह संचालकों की इच्छानुसार चेतना युक्त रोबोट की भूमिका संपादित करेगा। प्रयोग अभी इस स्थिति में चल रहा है कि मनुष्य के सिर से एक विशेष प्रकार की तारों से युक्त पट्टियाँ बाँध दी जाएँ और व्यक्ति के मस्तिष्क को एक प्रकार से रेडियो सुनते समय काम आने वाले एरियल की तरह बना दिया जाए। ट्रांसमीटर द्वारा फेंकी हुई इलेक्ट्रोमेग्नेटिक वेव को जिस प्रकार एरियल पकड़ता है और उसे रेडियो पर सुन लिया जाता है, उसी प्रकार वैज्ञानिक केंद्र द्वारा फेंकी गई तरंगों को मनुष्य के सिर पर बँधी हुई वह धातु पट्टी पकड़ेगी और उसे मस्तिष्क में प्रवेश कर देगी। बस चिंतन पर वही प्रेषित तरंगें छा जाएँगी और उसे जैसा सोचने के लिए निर्देश दिया गया था, वैसा ही सोचने के लिए विवश करेंगी। मनुष्य की स्वतंत्र चिंतन क्षमता समाप्त हो जायेगी और वह बौद्धिक पराधीनता से पूरी तरह ग्रस्त होकर वही सोचेगा, जो उसे सोचने के लिए बाध्य किया गया है।

धातु की पट्टी बँधवाने के झंझट से बचने के लिए एक-दूसरा सरल रासायनिक तरीका निकाला जा रहा है, वह है रेडियो तत्त्वों से प्रभावित औषधियों को मनुष्य के रक्त में मिला देना। इस कार्य के लिए इंजेक्शन लगाकर अथवा मुख के द्वारा खिलाकर उसे खून में घोल दिया जायेगा। अब वह सारा रक्त ही एरियल का काम करेगा और प्रेषित प्रभाव तरंगों को पकड़कर रक्त में समाविष्ट करेगा। यह रक्त मस्तिष्क में पहुँचने पर मनुष्य को उसी प्रकार से सोचने के लिए मजबूर कर देगा जैसा कि रक्त में मिश्रित तरंगें उसे प्रेरणा देंगी। इस अपेक्षाकृत अधिक सरल विधि से वैज्ञानिक साधन किसी भी व्यक्ति को कुछ भी सोचने और कुछ भी करने के लिए पूर्णतया पराधीन बना देंगे।

जिस प्रकार अंतरिक्षयानों का नियंत्रण-निर्देशन धरती पर बैठे हुए वैज्ञानिक करते रहे हैं और यान उनके निर्देशानुसार अपनी गतिविधियों में हेर-फेर करता रहता है, ठीक उसी प्रकार यह प्रयत्न

भी वैज्ञानिक क्षेत्र में आरंभ हो गया है कि मनुष्य के मन-मस्तिष्क को भी वैसी ही सूक्ष्म तरंगों द्वारा नियंत्रित किया जाए जैसे राकेटों को किया जाता है।

○ मनस्विता का चमत्कार

यह क्षेत्र मनस्वी महापुरुषों और सदाशयी उच्च उद्देश्यों के प्रति दृढ़ निष्ठावान् व्यक्तियों के लिए ही छोड़ दिया जाना चाहिए, ताकि इस विज्ञान का सदुपयोग ही हो सके। दुरुपयोग की रत्ती भर संभावना न रहने पाये। प्राचीन काल में मनीषी-ऋषियों ने इस तरह के सफल प्रयोग किये थे, उन प्रयोगों का आधार और विज्ञान निःसंदेह आज के भौतिक विज्ञान से अलग था; परंतु इस तथ्य को आधुनिक विज्ञानवेत्ता भी स्वीकार कर चुके हैं कि प्राचीन काल में भारत के अध्यात्मवेत्ता किसी समय में इस दिशा में बहुत बड़ी खोज करने और सफलता प्राप्त करने में कृतज्ञ हो चुके हैं। बुद्ध की प्रचंड विचारधारा से अपने समय में लगभग ढाई लाख व्यक्तियों ने अपनी विलासी एवं भौतिक महत्त्वाकांक्षी गतिविधि छोड़कर, उस कष्टकर प्रयोजन को अपनाने के लिए खुशी-खुशी कदम बढ़ाया, जो प्रचंड मानसिक विद्युत् से सुसंपन्न बुद्धि को अभीष्ट था। भगवान् राम ने रीछ-वानरों को ऐसे कार्य में जुट जाने के लिए भावावेश में संलग्न कर दिया, जिससे किसी लाभ की आशा तो नहीं उल्टे जीवन संकट स्पष्ट था। भगवान् कृष्ण ने महाभारत की भूमिका रची और उसके लिए मनोभूमियाँ उत्तेजित कीं। पांडव उस तरह की आवश्यकता अनुभव नहीं कर रहे थे और न अर्जुन को उस संग्राम में रुचि थी, तो भी विशिष्ट प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए मानसिक क्षमता के धनी कृष्ण ने उस तरह की उत्तेजनात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं। गोपियों के मन में सरस भावाभिव्यंजनाएँ उत्पन्न करने का सूत्र संचालन कृष्ण ही कर रहे थे।

ईसा मसीह, मुहम्मद, जरथुस्त्र आदि धार्मिक क्षेत्र के मनस्वी ही थे, जिन्होंने लोगों को अभीष्ट पथ पर चलने के लिए विवश किया। उपदेशक लोग आकर्षक प्रवचन देते रहते हैं, पर उनकी

कला की प्रशंसा करने वाले भी उस उपदेश पर चलने को तैयार नहीं होते। इसमें उनके प्रतिपाद्य विषय का दोष नहीं, उस मनोबल की कमी ही कारण है, जिसके बिना सुनने वालों के मस्तिष्क में हलचल उत्पन्न कर जा सकना संभव न हो सका। नारद जी जैसे मनस्वी ही अपने स्वल्प परामर्श से लोगों की जीवनधारा बदल सकते हैं, वाल्मीकि, ध्रुव, प्रहलाद, सुकन्या आदि कितने ही आदर्शवादी उन्हीं की प्रेरणा भरी प्रकाश किरण पाकर आगे बढ़े थे।

समर्थ गुरु रामदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गुरुगोविंद सिंह, दयानंद, कबीर आदि मनस्वी महामानवों ने अपने समय के लोगों को उपयोगी प्रेरणाएँ दी हैं और अभीष्ट पथ पर चलाने के लिए साहस उत्पन्न किया है। गाँधी जी की प्रेरणा से स्वतंत्रता संग्राम में अगणित व्यक्ति असाधारण त्याग बलिदान करने के लिए किस उत्साह के साथ आगे आये, यह पिछले ही दिनों की घटना है।

शक्तिपात इसी स्तर की प्रक्रिया है, जिसमें मानुषी विद्युत् से सुसंपन्न व्यक्ति का तेजस् दूसरे अल्प तेजस् व्यक्तियों में प्रवेश करके, उन्हें देखते-देखते समर्थ बनाकर रख देती है। दीपक से दीपक जलने का, पारस स्पर्श से लोहा का सोना होने का उदाहरण इसी प्रकार के संदर्भों में दिया जाता है।

वैज्ञानिक आधार पर मस्तिष्कीय नियंत्रण की प्रक्रिया यदि मनुष्य के हाथ लग गई तो उससे सदा के लिए मानवी प्रज्ञा को किसी अधिनायकवादी गुट के वशवर्ती हो जाने का खतरा है। अणु शक्ति के विनाशात्मक उपयोग की आशंका इसी कारण है कि उसका स्वामित्व अवांछनीय लोगों के हाथों में चला गया है। यदि वह प्रामाणिक हाथों में सीमित रही होती तो उस वैज्ञानिक उपलब्धि से केवल हित साधन ही होता।

मस्तिष्कीय नियंत्रण का विज्ञान विकसित होना चाहिए, पर उनका नियंत्रण सनातन महामानव ही कर सकें ऐसी व्यवस्था रहनी चाहिए। अच्छा यही है कि इस प्रतिस्पर्धा के युग में आत्मविज्ञान

विकसित किया जाए और उस विद्या के विज्ञानी इस महाशक्ति के उत्पादन एवं उपयोग करने की दिशा में पहल करें।

यह प्रश्न फिर भी अपने स्थान पर है कि क्या दूरवर्ती लोग बिना किसी तार, रेडियो आदि के केवल मनःचेतना के आधार पर परस्पर संबंध स्थापित कर सकते हैं, उनके बीच विचारों का आदान-प्रदान हो सकता है ? इस प्रश्न को किंवदंतियों पर आधारित नहीं छोड़ा गया है, वरन् मनःशास्त्रियों ने इस संदर्भ को शोध का विषय भी बनाया है। उत्तरी केरोलिना के ड्यूक विश्वविद्यालय द्वारा डॉ० राइन के नेतृत्व में इस विषय पर ढूँढ़ खोज की गई और कैंब्रिज विश्वविद्यालय के डॉ० ह्वीटले कैरिंगटन ने इस अन्वेषण को हाथ में लिया। उन्होंने पाया कि यह चेतना एक सीमा तक हर किसी में होती है, पर जो लोग उसे विकसित कर लेते हैं, वे अपेक्षाकृत अधिक सफल रहते हैं। किन्हीं को जन्मजात रूप से यह प्राप्त रहती है और कुछ साधनाओं द्वारा इसे विकसित कर सकते हैं। प्रेम और घनिष्ठता की स्थिति में यह आदान-प्रदान किन्हीं महत्त्वपूर्ण अवसरों में अनायास भी हो सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मस्तिष्क की क्षमताओं को किसी भी अभीष्ट दिशा में मोड़ा व विकसित किया जा सकता है। इतना ही नहीं, उससे मनवांछित सफलताएँ और सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। विज्ञान देर-सबेर में इस तथ्य से भी साक्षात् करेगा ही। अभी तो वह मस्तिष्क का एक चौथाई स्वरूप भी नहीं समझ पाया है, केवल इसका सात प्रतिशत भाग ही जाना जा सका है। उसके जाने पर भी विज्ञान और वैज्ञानिक हतप्रभ हैं—मस्तिष्क को विलक्षण और अद्भुत बता रहे हैं, तो पूरा स्वरूप जान लेने के बाद होने वाले आश्चर्य की कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती।

□ □

अलौकिक कलाकार की अद्‌भुत संरचना

मस्तिष्कीय गतिविधियों की प्रत्यक्ष जानकारी को देखते हुए उसे किसी अलौकिक कलाकार की अद्‌भुत संरचना कहा जा सकता है। वैसा कुछ बना सकने की बात सोचने का साहस ही कौन करेगा, अभी तो उसकी गतिविधियों को समझ सकने में ही बुद्धि हतप्रभ रह जाती है। अनुमान है कि विदित मस्तिष्कीय गतिविधियाँ बहुत स्वल्प हैं। समूची मानसिक क्षमता का प्रायः सात प्रतिशत ही क्रियाशील पाया जाता है। शेष तो अभी अविदित अर्ध-मूर्च्छित स्थिति में ही बंद स्टोर की तरह सुरक्षित पड़ा है, जो क्रियाशील है वह उस प्रयोजन में काम आता है, जिसमें सामान्य जीवन की निर्वाह व्यवस्था का संचालन होता है। निर्वाह प्रयोजन तो समग्र जीवन सत्ता का एक छोटा-सा अंश है। इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ सोचने और करने को बच जाता है। कभी किसी को उस अविज्ञात को जानने की, निष्क्रिय को क्रियाशील बनाने की और प्रसुप्त को जाग्रत् करने की आवश्यकता पड़े तो उसे इन सील बंद स्टोरों को खोलना पड़ेगा, जो अपने भीतर बढ़ी-चढ़ी दिव्य क्षमताएँ छिपाये हुए हैं।

इतने पर भी विभिन्न मानसिक क्रियाकलापों के लिए छोटे-बड़े विभिन्न क्षेत्र निर्धारित हैं और अपने-अपने जिम्मे के काम निपटाने में लाखों-करोड़ों कोशाएँ, चींटियों, दीमकों एवं मधुमक्खियों की तरह एक जुट होकर काम करती देखी जा सकती हैं। इनकी क्रियाशीलता न केवल वर्तमान जन्म के द्वारा संग्रहीत अनुभवों पर निर्भर है वरन् उसमें वंश परंपरागत अनुभवों और अभ्यास का भी भंडार भरा रहता है। पशु-पक्षियों तथा दूसरे जीव-जंतुओं के मस्तिष्क तो प्रायः इन आनुवंशिक की उपलब्धियों के सहारे ही अपना सारा क्रियाकलाप चलाते हैं।

मस्तिष्क यों शारीरिक अवयव माना जाता है, पर जीव चेतना का केंद्र संस्थान वही है। जड़ और चेतन का संगम इसी को माना जाता है, शरीर न रहने पर भी मस्तिष्क का सार-तत्त्व जीव चेतना के साथ लिपटा रहता है। मरणोत्तर काल में भी उसकी सत्ता बनी रहती है। भूतप्रेतों को परित्यक्त शरीर के साथ संबंधित घटनाएँ स्मरण बनी रहती हैं और वे उस भूत चिंतन के आधार पर ही अपना समय गुजारते हैं। वर्तमान और भविष्य के लिए उपयुक्त साधन उनके पास उस स्थिति में नहीं होते अस्तु भूतकालीन स्मृतियों का दबाव ही उन पर छाया रहता है। संभवतः मृतात्माओं का नामकरण 'भूत' इसी आधार पर किया गया हो। पुनर्जन्म में कइयों को कितनी ही घटनाएँ पिछले जीवन की याद बनी रहती है और ऐसे कथन बहुत बार आश्चर्यजनक रीति से सत्य पाये जाते हैं। इतनी तो हर किसी को होती है कि भूतकाल के अनुभव एवं संस्कार जन्म-जन्मांतरों तक चले जाते हैं। जन्मजात विशेषताओं का ऐसा परिचय भी बहुत बार मिलता है, जिनका आनुवंशिक तथा पारिवारिक परिस्थितियों के साथ कुछ भी तालमेल नहीं बैठता। पूर्व जन्मों की संग्रहीत पूँजी मस्तिष्क के बहीखाते में जमा रहती है और अपने अस्तित्व के प्रभाव का परिचय नये जन्म में भी देती रहती है।

मस्तिष्क के यों भी विभिन्न क्रियाकलाप हैं, पर सबकी कार्य पद्धति और प्रणाली अद्भुत एवं विलक्षण है। उन सबका न तो अभी पूर्णतया अध्ययन किया जा सका है और न ही उनके बारे में जाना जा सका है। उदाहरण के लिए स्मरणशक्ति को ही लें, अभी तक ऐसा कोई अंतिम उदाहरण देखने को नहीं मिला है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि मनुष्य अधिक से अधिक इतना स्मरण रख सकता है। स्मरण शक्ति की प्रखरता से मनुष्य अधिक विचारशील समझा जा सकता है और उसके ज्ञान की परिधि अधिक बड़ी होती है, जबकि भुलक्कड़ लोग महत्त्वपूर्ण ज्ञान संचय से तो वंचित रहते ही हैं, साथ ही दैनिक काम-काज में भी जो

आवश्यक था उसे भी भूल जाते हैं और समय-समय पर घाटा उठाते तथा ठोकरें खाते हैं।

किसी-किसी को स्मृति की प्रखरता जन्म-जात रूप से मिलती है और वह इतनी पैनी तथा व्यापक होती है कि दूसरे लोग चमत्कृत होते और अवाक् रहते देखे जाते हैं।

इंग्लैंड निवासी एक अंधे व्यक्ति फिडिंग को दस हजार व्यक्तियों के नाम याद थे। इतना ही नहीं वह आवाज सुनकर उस व्यक्ति का नाम बता देता था। इसी प्रकार की विलक्षणता एक और मांटुगुनस नामक अंग्रेज में थी। वह जन्मांध था। पच्चीस वर्ष तक उसने पोस्टमेन का काम किया। घर-घर जाकर चिट्ठी बाँटता था। उसके बाँटने में कभी गलती नहीं पकड़ी गई। वह पत्रों को सिलसिलेवार लगाता था और बाँटने से पहले दूसरों की सहायता से नाम और क्रम मालूम कर लेता था। इतने भर से हर दिनों सैकड़ों चिट्ठियाँ बाँटने में उसकी स्मरण शक्ति ही काम दे जाती थी।

जर्मन इतिहास में स्मरण शक्ति की प्रखरता के लिए विद्वान् वेवूर प्रसिद्ध है। यह ख्याति उन्हें सबसे प्रथम तब मिली जब वे एक दफ्तर में क्लर्क थे। कागजों में संयोग वश आग लग गई। इस पर वेवूर ने सारे रजिस्टर और जरूरी कागज मात्र स्मरण शक्ति के आधार पर ज्यों का त्यों बना दिये। इसके बाद वे अपनी स्मृति की विलक्षणता के एक से एक बड़े प्रमाण देते चले गये और उस देश के प्रख्यात लोगों में गिने गये।

जर्मनी में ही म्यूनिख की नेशनल लायब्रेरी के डायरेक्टर जोनफ वर्नहर्ड डंकन की भी ऐसी ही ख्याति है। उन्हें आती तो कितनी ही भाषाएँ थीं, पर ६ भाषाओं पर उनका पूरा अधिकार था। उन्हें पत्र-व्यवहार बहुत करना पड़ता था। इसके लिए उनके पास नौ विभिन्न भाषाओं के नौ अलग-अलग सेक्रेटरी थे। वे सबको एक साथ बिठा लेते थे और सभी को पत्र लिखाते जाते थे। इतना ही

नहीं उन्हें पूरी बाइविल अक्षरशः कंठस्थ थी। प्रसंग के अनुसार वे कहीं से भी सुना सकते थे।

मिश्र के बादशाह नासर के पास २० हजार गुलाम थे। उसे उनके नाम ही नहीं जन्म-स्थान, जाति, उम्र और पकड़े जाने का स्थान भी जबानी याद रहता था। कब, कौन-सा गुलाम, कितने दाम का खरीदा-बेचा गया था, यह भी उन्हें बिना भूल-चूक के याद था।

राजा भोज के दरबारी एक श्रुतिधर नामक विद्वान् का उल्लेख मिलता है, जो एक घड़ी (२४ मिनट) तक सुने हुए प्रसंग को तत्काल ज्यों का त्यों सुना देते थे।

इतने पर भी यह नहीं समझा जाना चाहिए कि स्मरण रखने की विशिष्ट क्षमता कोई दैवी वरदान या जन्मजात सौभाग्य ही होता है। वह अन्य शारीरिक क्षमताओं की तरह एक सामान्य सामर्थ्य ही है, जिसे प्रयत्नपूर्वक आसानी से बढ़ाया जा सकता है।

मस्तिष्कवेत्ता विशारद डॉ० विल्डर पेनफील्ड ने मस्तिष्क के भीतर एक ऐसी पट्टी का पता लगाया है, जो स्मरण शक्ति का मूलभूत आधार है। देखे, सुने और सोचे हुए सभी विचार जो मस्तिष्क में प्रवेश करते हैं, उन्हें उस पट्टी में होकर ही गुजरना पड़ता है; अस्तु वे स्मृतियाँ अति सूक्ष्म फिल्मों की तरह अथवा टेपरिकार्डर में भरी आवाज की तरह जम जाती हैं और एक कोने में पड़ी रहती हैं। साधारणतया वे स्मृति-पटल पर यदि विशेष प्रयत्न किया जाए तो उन्हें उभारा जा सकता है और कितनी ही पुरानी देखी, सुनी या सोची हुई बात फिर से उसी स्पष्टता के साथ सजग की जा सकती है।

स्मरण प्रक्रिया सँभालने वाली यह काले रंग की दो पट्टियाँ हैं, जो लंबाई में लगभग २५ वर्ग इंच और मोटाई में एक इंच के दसवें भाग के बराबर हैं। मस्तिष्क के भीतर यह चारों ओर लिपटी हुई हैं। कनपटियों से नीचे इन्होंने एक सिरे से सारे मस्तिष्क का घेरा ही डाला हुआ है।

डॉ० पेनफील्ड ने विद्युत् धारा का स्पर्श कराके इस पट्टी के विभिन्न स्थल सजग किये तो वह उन स्थानों में अंकित पुरानी घटनाएँ और बात ज्यों की त्यों स्मरण हो आई, किंतु जैसे ही वह विद्युत् स्पर्श हटाया गया वैसे ही वे बातें पुनः विस्मृत हो गईं। ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत करके उपरोक्त वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि मनुष्य के पास उसके सारे स्मरण यथा स्थान सुरक्षित रिकार्डों की तरह संग्रहीत रहते हैं। हाँ, वे हर समय स्मरण नहीं आते। प्रयत्नपूर्वक उन्हें उभारा जा सकता है और किसी भी विस्मृत बात को स्मृति-पटल पर लाया जा सकता है।

मस्तिष्क २५ वर्ग इंच की देखने में एक छोटी-सी पुस्तक है, जिसकी विभिन्न -कोशिकाएँ इनमें से प्रत्येक पृष्ठ पर ग्रामोफोन रिकार्डों की रेखाओं की तरह अगणित स्मृतियाँ और ध्वनियाँ ऐसी अमिट स्याही से लिखी गई हैं कि उन्हें आवश्यकतानुसार कभी भी पढ़ा, सुना या देखा जा सकता है। आँखें औसतन ५० लाख चित्र हर दिन उतारती है। इसके साथ-साथ ध्वनियों, गंधों, स्पर्शों, स्वादों एवं विचारों का समुद्र हर घड़ी लहराता रहता है। यह सारा तूफान मस्तिष्क में टकराता है, वह उसे समझता और निष्कर्ष निकालता है। इसके बाद भी उसे निरर्थक समझकर हटा नहीं देता वरन् सँभाल-सँजोकर अपने रिकॉर्ड दफ्तर में जमा कर देता है, ताकि आवश्यकतानुसार उन अनुभूतियों को फिर कभी प्रयुक्त किया जा सके।

यों पुरानी बातें हम भूल जाते हैं। इतनी बातें याद कर सकना संभव भी नहीं। इसलिए स्मरण—विस्मरण का क्रम साधारणतया चलता रहता है, किंतु साथ ही दैनिक जीवन में काम आने वाले समस्त घटनाक्रमों की एक अति सूक्ष्म साउंड फिल्म बनती जाती है, जिसे आवश्यकतानुसार कभी भी प्रोजक्ट किया जा सके।

दैनिक अनुभूतियों में कुछ बहुत ही कटु और सामान्य क्रम के विपरीत होती हैं। वे दूसरों के ऊपर या अपने ऊपर क्रोध व्यक्त करती हुईं ,पैर में गहराई तक चुभे हुए काँटे की तरह दर्द

करती रहती हैं। किसी ने अपने साथ दुर्व्यवहार किया है तो यह विक्षोभ दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष, क्रोध-प्रतिरोध के रूप में उभरता है और यदि कोई पाप, अपराध, छल या अनैतिक कार्य किया है तो उसकी क्षुब्ध प्रतिक्रिया, आत्म-विकार के रूप में अपने ही ऊपर बरसती रहेगी। दोनों ही परिस्थितियों में ज्वालामुखी की तरह रह-रहकर फूटते रहने वाला उद्वेग मनःस्थिति को अशांत किये रहता है और ज्वरग्रस्त शरीर की तरह उद्वेगग्रस्त मस्तिष्क भी दुर्बल होता जाता है।

स्मृतियों का भंडार हर मनुष्य के भीतर सुरक्षित रहता है, पर उन्हें ढूँढ़ने और सामने लाने वाले यंत्र कुंठित हो जाते हैं। इसलिए वे अपने ही दफ्तर की फाइल को आप ढूँढ़ निकालने में असमर्थ हो जाते हैं, यही विस्मृति है। यदि ढूँढ़ निकालने वाले पुर्जों को तेज रखा जाए और उस कार्य में दिलचस्पी एवं फुर्ती बनी रहे तो स्मरण शक्ति तीव्र रखी जा सकती है। कई व्यक्तियों में तीव्र स्मरण की विशेषता जन्मजात होती है, पर यह हर किसी के लिए संभव हो सकता है कि प्रयत्नपूर्वक उसे अधिक तीव्र और सक्षम बना ले। स्मरण शक्ति के धनी कितने ही व्यक्तियों ने ऐसा ही किया है, उनमें यह विशेषता जन्मजात नहीं थी। अभ्यास और मनोयोग के समन्वय से उन्होंने उसे बढ़ाया और आश्चर्य की तरह देखे जाने वाले स्मृति के धनियों में अपना नाम लिखाया।

जापान निवासी हनावा होकाइशी सन् १७२२ में जन्मा और पूरे १०१ वर्ष जीकर १८२३ में मरा। वह सात वर्ष की आयु में अंधा हो गया था, पर उससे क्या, उसने बिना नेत्रों के ही दूसरों से सुनकर अपनी ज्ञान वृद्धि आरंभ कर दी। जो सुना—उसे पूरे मनोयोग के साथ सुना और ध्यान में रखा, फलस्वरूप इसके ज्ञान का कोश इतना बढ़ गया कि उसे एक अद्‌भुत आश्चर्य माना जाता रहा। हनावा होकाइशी के द्वारा नोट कराये गये ज्ञान भंडार को जापान में २८२० खंडों के एक अनुपम विशाल ग्रंथ के रूप में छापा गया। यह अब तक का संसार का सबसे बड़ा ग्रंथ है।

लिथवानियाँ निवासी कैवी ऐलिजा ने दो हजार से अधिक पुस्तकें याद कर रखी थीं, पूछने पर वह उनका कोई भी पृष्ठ बिना पुस्तक देखे सुना देती थी। फ्रेंच राजनीतिज्ञ लिआन गैंबटा भी इसी श्रेणी में आते थे। उनकी तुलना ऐलिजा से की जाती थी, उन्होंने हजारों पृष्ठ विभिन्न पुस्तकों के याद कर रखे थे। ग्रीक विद्वान् रिचार्ड पोर्सन को भी चलता-फिरता विश्वकोश कहा जाता था, उनकी स्मरण शक्ति भी अद्‌भुत थी।

नेलसन पिल्सवरी को शतरंज का जादूगर कहा जाता था। वह एक साथ बीस शतरंजों को बिछाकर, बीस खिलाड़ियों के साथ चालें चलता था और सभी पर उसका पूरा ध्यान रहता था। कई बार तो वह शतरंजों के साथ-साथ कई खिलाड़ियों के साथ ताश खेलना भी आरंभ कर देता था।

प्रसा (जर्मनी) का पुस्तकाध्यक्ष मैथरिन बेसिरे एक बार जो शब्द सुन लेता था, उसे ज्यों का त्यों याद रखता था। एक बार बारह राजदूतों ने उसकी परीक्षा ली। उनकी भाषाओं से मैथरिन सर्वथा अपरिचित था। एक-एक करके बारहों ने अपनी-अपनी भाषा में बारह वाक्य कहे। उन्हें सुनने के बाद उसने उन शब्दों को क्रमशः ज्यों का त्यों दुहरा दिया। अंतर तनिक भी नहीं पाया गया।

वरमांट निवासी आठ वर्षीय बालक जेराकोलवर्न ने बिना गणित का क्रमबद्ध अध्ययन किये और बिना कागज कलम की सहायता के दिमागी आधार पर कठिन प्रश्नों के उत्तर देने की जो क्षमता दिखाई, उससे बड़े-बड़े गणितज्ञ चकित रह गये। जिन कठिन सवालों को केवल अच्छे गणित ज्ञाता ही काफी समय लगाकर हल कर सकते थे, उसने उन्हें बिना हिचक आनन-फानन में कैसे हल कर दिया, इसे देखकर सब दंग रह जाते थे। आश्चर्य यह था कि पुस्तकीय आधार पर उसे गणित के सामान्य नियम भी ज्ञात न थे।

गणित शास्त्री जेड्डिया वाक्सटन बहुत समय से एक गणितीय समस्या में उलझे हुए थे, हल निकल नहीं रहा था। एक

दिन उनकी भेंट स्मरण शक्ति के धनी जॉन मार्टिन डेस से हुई। उसने उनका हल मिनटों में बता दिया। गणित संबंधी उलझनों को सुलझाने के लिए डेस अपने समय में दूर-दूर तक प्रख्यात था।

सर जॉन फील्डिंग इंग्लैंड के जज थे। वे अंधे थे। पर उनके कान इतने सक्षम थे कि अपने जीवन काल में जिन ३००० अपराधियों से उन्हें वास्ता पड़ा था, उन सबकी आवाज वे ठीक तरह पहचान सकते और उनका नाम बता सकते थे। मुकदमों के बाद मुद्दतों बाद वे लोग कभी उनसे मिलने आते तो नेत्र न रहने पर भी केवल स्मरण शक्ति के आधार पर उसका नाम और मुकदमे का संदर्भ बता देते थे। उनकी यह अद्भुत स्मरण शक्ति चिरकाल तक चर्चा का विषय बनी रही।

फ्रांसिस्को मैरिया ग्रापाल्डे नामक एक प्रसिद्ध कवि चौदहवीं शताब्दी के अंत में हुआ है। वह परमा, इटली का निवासी था। उसकी विलक्षण प्रतिभा यह थी कि दोनों हाथों से दो कविताएँ एक साथ लिखता जाता था। इनमें एक लैटिन भाषा में होती थी और दूसरी पुरातन ग्रीक भाषा में।

कैंटरवरी के प्रधान पादरी टॉमस क्रेकर ने तीन महीने में पूरी बाइबिल जबानी याद कर डालने का एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया।

सन् १७२४ में जन्मा और १८१२ में मरा स्कॉटलैंड का प्रख्यात डंकन मैक इंटायर उन दिनों अपनी कविताओं के लिए अपने देश ही नहीं सारे योरोप में प्रसिद्ध था, पर वह न पढ़ना जानता था न लिखना, अपनी सारी प्रतिभा उसने सुन-समझकर ही विकसित की थी।

ग्रीक पोर्सन नामक व्यक्ति को मिल्टन की प्रायः सभी रचनाएँ याद थीं और वह उन्हें सीधी ही नहीं उल्टी करके भी सुना सकता था।

लाक्रोज ने अपनी स्मरण शक्ति का एक अनोखा प्रदर्शन करके दर्शकों को चकित कर दिया। उसने अपरिचित १२ भाषाओं की १२ कविताएँ सुनी और दूसरे ही क्षण उसने उन्हें ज्यों का त्यों दुहरा दिया।

विक्टर ह्यूगो की रचनाएँ अति प्रिय लगने और उन्हें बार-बार मनोयोगपूर्वक पढ़ते रहने के कारण गमवेशरुथ ने ज्यों का त्यों याद कर लिया था और उसे पूछे जाने पर वह पुस्तक के किसी भी पृष्ठ को आरंभ करके कितने ही पन्ने सुना देता था।

स्मृति का धनी होना न कोई जादू है और न वरदान। यह किसी कार्य में गहरी अभिरुचि रखने, सावधानी के साथ समझने और मनोयोगपूर्वक उसे मस्तिष्क में सँभाल कर रखने की पद्धति भर है। ढूँढ़ निकालने का अभ्यास भी कुछ अधिक मुश्किल नहीं है। सरकस में काम करने वालों को जितना परिश्रम अपने शरीर और जानवर साधने में करना पड़ता है, उतना ही प्रयत्न यदि मस्तिष्क को साधने में किया जाए तो कोई मंद बुद्धि भी कालिदास की तरह बौद्धिक प्रतिभा का धनी हो सकता है।

पोर्सन ग्रीक भाषा का अद्वितीय पंडित था, उसने ग्रीक भाषा की सभी पुस्तकें और शेक्सपियर के नाटक मुख जबानी याद कर लिये थे। ब्रिटिश संग्रहालय के सहायक अधीक्षक रिचर्ड मार्नेट बारह वर्ष तक एक संग्रहालय के मुद्रित पुस्तक विभाग के अध्यक्ष थे, इस संग्रहालय में पुस्तकों की हजारों अलमारियाँ और उनमें करोड़ों की संख्या में पुस्तकें थीं। श्री गार्नेट अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे न केवल पुस्तक का ठिकाना बता देते थे, वरन् पुस्तक की भीतरी जानकारी भी देते थे।

समझा जाता है कि बचपन में स्मरण शक्ति तीव्र होती है और पीछे आयु बढ़ने के साथ-साथ मंद होती है, पर वस्तुतः बात ऐसी है नहीं। छोटी आयु में मस्तिष्क के ऊपर बोझ कम रहता है। विचारणीय प्रश्न कम रहते हैं, घटनाएँ, संवेदनाएँ और समस्याएँ भी उन दिनों थोड़ी ही रहती हैं। फलतः बोझ कम रहता है और जो

सोचना और याद रखना है, वह आसानी से निपट जाता है किंतु बड़े होने के साथ-साथ कार्य क्षेत्र बढ़ता जाता है, साथ ही स्मरण रखने, निष्कर्ष निकालने एवं निर्णय करने का भार भी। ऐसी दशा में बहुत काम करते रहने पर भी कुछ में अधूरापन रह जाना अप्रत्याशित नहीं। जो कुछ सही रीति से पूरा हो गया उसकी ओर तो ध्यान किया नहीं गया, पर जो कमी रह गई उसी को मस्तिष्क की कमजोरी या स्मरण शक्ति की कमी मान लिया गया। ऐसे ही प्रसंगों को लेकर दिमागी शक्ति घट जाने की बात सोच ली जाती है और चिंता होने लगती है, जबकि वस्तुतः वैसा कुछ होता नहीं।

ईंधन न मिलने पर चूल्हा ठंडा हो जाता है। मस्तिष्कीय कोशिकाओं को भी अपना काम सही रीति से करते रहने के लिए ऑक्सीजन का ईंधन चाहिए। बचपन में नई मशीन यह ईंधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध और वितरण करती है, तब मस्तिष्क को भी यह खुराक पर्याप्त मात्रा में मिलती है और बच्चों की स्मरण शक्ति तीव्र रहती है। वे अपने पाठ आसानी से याद कर लेते हैं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, वैसे-वैसे कोमलता घटती है और कठोरता बढ़ती है। फलतः ऑक्सीजन का उत्पादन-वितरण घटता जाता है, अवयवों में जो कोमलता बचपन अथवा किशोरावस्था में होती है, वह आयु बढ़ने के साथ घटती जाती है। ऑक्सीजन प्रवाह के मस्तिष्कीय कोशाओं तक पूरी तरह पहुँचने में व्यवधान उत्पन्न होता है, फलतः आयु के साथ स्मरण शक्ति घटती है। बुद्धिमत्ता समस्त स्मृतियों के मंथन का निष्कर्ष है। अस्तु उसकी मात्रा तो बढ़ती है पर स्मरण शक्ति के संदर्भ में बच्चों की स्थिति की अपेक्षा बड़ी आयु वाले कमजोर ही पड़ते हैं। वृद्धावस्था में रक्त वाहनियाँ कठोर पड़ जाती हैं और रक्त संचार उतनी अच्छी तरह नहीं हो पाता, फलतः मस्तिष्कीय कोशिकाएँ पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन न मिलने के कारण दुर्बल होती हैं। फलतः बूढ़े लोगों की स्मृति दिन-दिन क्षीण होती जाती है, प्रायः वे अपने दैनिक उपयोग की

वस्तुएँ तक जहाँ-तहाँ भूलने लगते हैं। परिचितों के नाम तक याद नहीं रहते हैं।

वैज्ञानिक स्मृति संस्थान के घटकों की तुलना किसी प्रशिक्षित और घनिष्ठ सहयोग-अनुशासन अपनाकर चलने वाली सेना से करते हैं। मस्तिष्कीय साम्राज्य को सुसंचालित रखने के लिए कुशल कर्मचारियों की एक कुशल सेना नियुक्त है। सैनिकों अथवा इंजीनियरों का नाम है—नर्व सेल्स-तंत्रिका कोशिकाएँ। इनकी संख्या प्रायः चौदह अरब कूती गई है। इनकी लघुता देखते ही बनती है। कार्य की महत्ता और आकर की लघुता को देखते हुए ईश्वर की महिमा वर्णन में कहीं जाने वाली उक्ति 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' मस्तिष्क तंत्र पर भी पूरी तरह लागू की जा सकती है। तंत्रिकाएँ कोशिकाओं का आकार का इंच के हजारवें भाग से भी कम है और वजन की दृष्टि से वह एक औंस का छह खरबवाँ हिस्सा मात्र होती हैं।

सेना के सभी सदस्यों को यों पृथक् काम करना पड़ता है, पर उसकी वास्तविक शक्ति सैनिकों के परस्पर मिलकर काम करने में और एक-दूसरे के लिए आवश्यक साधन जुटाते रहने में सन्निहित रहती है। ठीक यही पद्धति तंत्रिका कोशिकाओं में काम करती हैं। उन्हें परस्पर जोड़े रहने का कार्य नर्व फाइवर अर्थात् तंत्रिका-तंतु करते हैं। इनके इन्सुलेशन पूरी तरह इस संस्थान पर छाये हुए हैं और उनमें बिजली के इंपल्स दौड़ते रहते हैं। यों प्रत्येक कोशा और तंतु अपने आप में महत्त्वपूर्ण और अपनी भौतिक विशेषता से संपन्न हैं तो भी उन्हें मिल-जुलकर ही अपना काम संपन्न करना पड़ता है। उनकी संयुक्त शक्ति से ही विभिन्न मानसिक प्रयास बनते और चलते हैं। इंद्रिय संस्थान से जो कोई भी सूचनाएँ मस्तिष्क में पहुँचती हैं, उनका क्या उपयोग किया जाए, इसका मुकदमा मस्तिष्क मजिस्ट्रेट को तत्क्षण करना पड़ता है। यह अनायास ही नहीं हो जाता। इसके लिए अनेकों गवाहों, वकीलों, सबूतों, नजीरों, कानूनों

की उसे देखभाल करनी पड़ती है। इस कार्य में तंत्रिका कोशाओं में संग्रह हुए अनुभव काम आते हैं। विभिन्न व्यक्तियों की कोशाएँ पृथक्-पृथक् प्रकार के अनुभव एवं अभ्यास सँजोए रहती हैं। इसलिए उनके निर्णय भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। एक ही प्रश्न पर लोगों के अलग-अलग प्रकार के फैसले होते हैं। यह उनके कोश समूह के संग्रहीत अनुभवों और अभ्यासों की भिन्नता पर निर्भर रहता है। इन कोशाओं के छोटे-छोटे समूह होते हैं, जो परस्पर मिलकर एक प्रकार का काम पूरा करने की दृष्टि से सक्षम और अभ्यस्त होते हैं। यह मंडलियाँ कभी-कभी तो दस-दस हजार कोशाओं की टीम की तरह मिल-जुलकर काम करती देखी गई हैं। सभी चौदह अरब कोशाएँ एक साथ तो काम धाम नहीं करतीं, पर सामान्य रूप से जो काम होता रहता है, उसे भी जब इलेक्ट्रोएन्सेफैलोग्राफ जैसे यंत्रों से देखा जाता है तो लगता है खोपड़ी के भीतर भयंकर विद्युतीय तूफान उठते और भारी हलचलें उत्पन्न करते हैं, अब तक बने कंप्यूटरों में जो सर्वश्रेष्ठ है उनमें दस लाख से अधिक इकाइयाँ नहीं रखी जा सकी और उनमें से प्रत्येक का संपर्क समीपवर्ती पाँच-छह के साथ ही जुड़ सकना संभव हो सका है, पर इसकी तुलना में मस्तिष्क की तुलना कर सकना अतीव कठिन है। यों मस्तिष्क एक है और उसके सभी घटक एक-दूसरे के साथ पूर्णतया सुसंबद्ध हैं।

टेपरिकार्डर पर कुछ आवाजें अंकित कर ली जाती हैं। इसके बाद वे चुप हो जाती हैं। आवश्यकतानुसार उसे उत्तेजित करके फिर से सुना जा सकता है। मस्तिष्क एक प्रकार का टेपरिकार्डर है, उसमें असंख्य टेप की हुई घटनाएँ स्मृतियों के रूप में अंकित हो जाती हैं, इसके बाद में वे विस्मृत हो जाती हैं; किंतु फिर जब कभी आवश्यकता पड़े उन्हें फिर से उभारा जा सकता है। यह स्मृतियाँ ध्वनि और चित्र एवं संवेदनाओं के त्रिविध सम्मिश्रणों के रूप में होती हैं। टेपरिकार्डर तो मात्र आवाज ही अंकित करता है, पर

मस्तिष्क की स्मृति-कोशाओं पर दृश्य भी नोट होता है। इतना ही नहीं जो भाव-संवेदना उस समय प्रतीत हुई थी, वह भी अंकित रहती है। समयानुसार यह चित्र धूमिल हो आते हैं। दस दिन पहले की घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा सकता है, वैसा दस वर्ष बाद नहीं हो सकता। तब तक वे अंकन काफी जीर्ण और धुँधले हो चुके होते हैं। अस्तु, उनमें से उतना ही भाग याद रहता है, जो अंकन के समय अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ था और जिसने अधिक गहरी छाप छोड़ी थी।

यहाँ एक बात और भी जानने योग्य है कि स्मृति अंकन के समय मस्तिष्क की क्या स्थिति थी ? इस बात पर भी यह निर्भर करता है कि कितनी गहराई तक स्मरण को नोट किया गया है ? उथले अंकन गहरे अंकनों की तुलना में जल्दी ही घट या मिट जाते हैं। कुछ मस्तिष्कों की जन्मजात बनावट ही बहुत थोड़ी होती है, वे काम चलाऊ स्मृतियाँ ही नोट कर सकते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि किसी शारीरिक कष्ट या मानसिक उद्वेग में मानसिक चेतना बुरी तरह उलझी रहती है या उपेक्षा-उदासीनता का दौर रहा होता है। ऐसी दशा में जो जानकारियाँ मिल रही हैं, वे या तो नोट हो ही नहीं पातीं या फिर इतनी उथली होती हैं कि दुबारा फिर उन्हें आसानी से उभार सकना संभव नहीं रहता।

मस्तिष्क विज्ञानी स्मरण शक्ति का आधार उस विद्युत् धारा को मानते हैं, जो संवादवाहिनी तंत्रिकाओं में गतिशील रहती है। न केवल स्मृतियों का अंकन और पुनर्जागरण वरन मस्तिष्कीय संरचना को अपने काम ठीक करने योग्य बनाये रहने में भी इसी विद्युत् धारा की प्रधान भूमिका रहती है। विद्युत् विज्ञान के छात्र आवर्तनशील विद्युत् चक्र रिवॉल्विंग सर्किट की क्रिया-प्रक्रिया से परिचित होते हैं। नाड़ियों में रक्त-परिभ्रमण की तरह कुछ विद्युत् भी अपने कार्य-क्षेत्र में प्रगतिशील रहती हैं। इस गतिचक्र में कितना विद्युत् आवेश और परिभ्रमण में कितनी

गतिशीलता है ? इन दोनों बातों पर यह निर्भर है कि स्मृतियों का स्थापन कितने और किस सीमा तक बना रहेगा ? यह विद्युत् स्वसंचालित और स्वनिर्मित होती है। मस्तिष्कीय तंत्रिकाओं की संरचना में सोडियम और पोटेशियम के आयन काम करते हैं। उनमें उथल-पुथल शरीर के अन्य अवयवों की भाँति होती रहती हैं। उसी सहज हलचल से मस्तिष्कीय विद्युत् धारा उत्पन्न होती और अपना काम करती रहती है। यह झीनी तो होती है, पर पूर्णतया अंत उसका तब तक नहीं होता जब तक कि जीव सत्ता का ही पूरी तरह अंत न हो जाए।

मस्तिष्क की स्मरणशक्ति को प्रखर बनाने के लिए सामान्य सिद्धांत के रूप में यह मान्यता प्रतिपादित की जाती है कि जिस बात पर अधिक ध्यान दिया जाता है, वह स्वभावतः विकसित होने लगती है और जिसकी उपेक्षा की जाती है, उसका घटना भी सुनिश्चित है। यह तथ्य स्वास्थ्य शिक्षा आदि सामान्य बातों से लेकर यश, वर्चस्व और स्मृति तक पर समान रूप से लागू होता है। घटनाओं की, अवधारणाओं की उपेक्षा की जाए, उन्हें अन्यमनस्क होकर उपेक्षित भाव से देखा जाए और महत्त्वहीन समझा जाए तो स्मृति पटल पर देर तक न टिक सकेंगी। इसके विपरीत यदि उन्हें तन्मयता के साथ एकाग्र होकर समझने, देखने का प्रयत्न किया जाए तो उनका स्मरण बहुत समय तक बना रहेगा। अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ मनुष्य को आजीवन स्मरण बनी रहती हैं, जबकि महत्त्वहीन समझी जाने वाली दो-चार दिन पुरानी होते ही विस्मरण हो जाती हैं।

मनुष्य-मनुष्य के बीच मस्तिष्कीय संरचना में अंतर नहीं, मात्र उसमें स्थूलता और सूक्ष्मता का अंतर पाया जाता है। वह भी जन्मजात नहीं परिस्थितिजन्य होता है, जिस प्रकार व्यायाम, भोजन आदि से शरीर को सुदृढ़ बनाया जा सकता है, उसी प्रकार मस्तिष्कीय प्रखरता की भी अभ्यास द्वारा अभिवृद्धि की जा सकती है।

मनोविज्ञानी कार्ल सीशोर का कथन है कि औसत व्यक्ति अपनी स्वाभाविक स्मरण शक्ति का मात्र दस प्रतिशत प्रयोग करता है। ६० प्रतिशत तो ऐसे ही मूर्च्छित और अस्त-व्यस्त स्थिति में पड़ी रहती हैं। फलतः मनुष्य मंद बुद्धि और मूर्ख स्तर का बना रहता है। यदि प्रयत्न किया जाए तो ऐसे लोग अपने को बौद्धिक दृष्टि से कहीं अधिक सक्षम बना सकते हैं। विकसित मस्तिष्क वालों को भविष्य में और भी अधिक तीक्ष्णता उत्पन्न कर लेने की पूरी-पूरी गुंजायश है।

विस्मरण के तीन कारण हैं—(१) किसी बात को स्मरण रखे रहने के पूर्व इच्छा का न होना। (२) प्रस्तुत विषयों को पूरे मनोयोगपूर्वक समझने का प्रयत्न न करना। (३) प्रसंगों में अरुचि और उपेक्षा का भाव रहना, महत्त्व स्वीकार न करना। यही है वह मनोभूमि जिसमें देखी, सुनी बातों को उथले और आधे-अधूरे रूप में ग्रहण किया जाता है। रुचि की गहराई न होने से वे बातें चिंतन के लिए काम करने वाले कणों में गहराई तक प्रवेश नहीं करती और जल्दी ही विस्मरण के गर्त में गिरकर खो जाती हैं।

ध्यान धारणा में यह विशेषता है कि मस्तिष्कीय विद्युत् का बिखराव रुकता है और उस तंत्र में ऐसी उत्तेजना होती है, जिसमें तंत्रिकाओं का मध्यवर्ती सहयोग प्रखर हो उठे और स्मरण शक्ति का अभाव अनुभव न हो। इसके लिए ध्यान अभ्यासों में से जो भी अपने लिए उपयुक्त हो उसे चुन लेना चाहिए। एकाग्रता बढ़ाने वाले सभी अभ्यास मनोबल बढ़ाते और स्मरण रखने की क्षमता को सतेज कर देते हैं।

आरंभ में मस्तिष्क के जिन सुरक्षित कोष्ठों की चर्चा की गयी है, उन्हें यदि जाग्रत् किया जा सके तो न केवल अद्‌भुत् विलक्षण स्मृति शक्ति प्राप्त की जा सकती है, अपितु वैसी ही और भी कितनी ही क्षमताएँ-सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, जिनका मस्तिष्क के ज्ञात-अज्ञात केंद्रों से संबंध है।

उच्च अध्यात्म प्रयोजनों के लिए इन्हीं कोष्ठकों को खोलने और उनसे उपलब्ध क्षमता को असाधारण कार्यों में लगाने का प्रयत्न योगी-तपस्वियों द्वारा किया जाता है।

स्मृति-विस्मृति की चर्चा करने की अपेक्षा जाग्रति और सुषुप्ति के आधार पर विवेचन करना अधिक युक्ति युक्त है। असावधानी, उपेक्षा और अनुत्साह की मनःस्थिति रहेगी तो विस्मृति की शिकायत बनी ही रहेगी। जहाँ ऐसी कठिनाई अनुभव होती हो, वहाँ मानसिक पोषण देने वाले आहार का परामर्श देना कोई विसंगति नहीं है, पर अधिक उपयुक्त यह है कि चिंतन तंत्र पर छाई हुई शिथिलता को दूर किया जाए। इसके लिए ध्यान-धारणा के सभी उपचार न्यूनाधिक मात्रा में लाभदायक ही सिद्ध होते हैं। उपासना में ध्यान-धारणा पर जोर देने के अनेक आध्यात्मिक लाभों के अतिरिक्त एक लाभ यह भी है कि उसे करते रहने पर मस्तिष्क की विभिन्न क्षमताओं और शक्तियों के भेद जाग्रत् होते रहते हैं।

□ □

रुग्ण रहें या सुखी, मनमर्जी की बात है

मस्तिष्क निस्संदेह अद्भुत और विलक्षण क्षमताओं का भंडार है। परमात्मा की ओर से मनुष्य को दिये हुए इस कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर भी कोई रोता-घिघियाता ही रहे तो उसके लिए किसी वस्तु को दोषी नहीं ठहराना चाहिए। कल्पवृक्ष की यह विशेषता है कि उसके नीचे बैठकर कोई भी जो कुछ कामना करता है, उसकी वह मनोकामना पूरी हो जाती है। पता नहीं ऐसा कोई कल्पवृक्ष है भी अथवा नहीं, पर मस्तिष्क के संबंध में यह विशेषता अक्षरशः सत्य है। अपने मस्तिष्क को मनचाही दिशा में मोड़कर उससे कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है—सुख भी दुःख भी, समस्याएँ भी, समाधान भी, रोग भी और स्वास्थ्य भी। कहने का अर्थ यह है कि मानसिक संतुलन साधकर अथवा गँवाकर हम बुरी परिस्थितियाँ स्वयं आमंत्रित करते हैं। वे किन्हीं बाहरी कारण में से उत्पन्न नहीं होतीं।

उदाहरण के लिए स्वास्थ्य को ही लिया जाए। कभी रक्त शुद्धि की बात स्वास्थ्य रक्षा का आधार मानी जाती थी, पर अब विज्ञान उस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि शरीर पर जितना आधिपत्य मस्तिष्क का है, उतना अन्य किसी पदार्थ या अवयव का नहीं। मस्तिष्क विक्षुब्ध हो तो उसका प्रभाव समूचे नाड़ी-संस्थान को अस्त-व्यस्त करने के रूप में पड़ता है। फलतः अवयव अपने-अपने निर्धारित क्रिया-कलापों को सही रूप में पूरा नहीं करते। ऐसी दशा में उन्हें रुग्णता घेरती चली जाती है।

विक्षुब्ध मस्तिष्क अपनी चिंतन प्रणाली का संतुलन खो बैठता है और दैनिक कार्य पद्धति के निर्धारण-संचालन में चूक पर चूक होने लगती है। अपनी स्थिति का सही मूल्यांकन कर सकना भी संभव नहीं रहता। गिरे ढंग से सोचने पर निराशा छा जाती है और भविष्य डरावना तथा अंधकारमय दीखने लगता है। ऐसे लोग

उदासी, अकर्मण्यता एवं अस्त-व्यस्तता के शिकार हो जाते हैं। यदि आवेश-उत्तेजना का अतिवाद छाया तो फिर दुष्टता, दुस्साहस, आक्रोश एवं विग्रह की घटनाएँ घटित होने लगती हैं। संपर्क में आने वालों के साथ व्यवहार अटपटे हो जाते हैं। फलतः वे लोग भी प्रत्युत्तर कटुतापूर्ण देते हैं और असहयोग, मनोमालिन्य, विद्वेष एवं झंझट भरे आदान-प्रदान चल पड़ते हैं। खीज बढ़ती है और आक्रमण-प्रत्याक्रमण का सिलसिला बन जाता है। प्रत्यक्ष आक्रोश न फूटा तो छिपी हुई दुर्भावना छल, निंदा एवं दुरुभिसंधियों के रूप में अगल-बगल से फूटती हैं। इस जाल-जंजाल में उलझे हुए व्यक्ति की मनःस्थिति अधिकाधिक विपन्न होती जाती है और आंतरिक अशांति की प्रतिक्रिया जीवन के हर क्षेत्र को असफल एवं विक्षुब्ध बनाती चलती है।

मानसिक असंतुलन का प्रतिफल आधि-व्याधि से समूचे जीवन क्षेत्र को ग्रस लेता है। शरीर रोगों का घर बन जाता है और मस्तिष्क को सनकें, घुटन और अवास्तविक मान्यताएँ जर्जरित बना देती हैं। ऐसे लोगों को विवेकरहित अवास्तविक और अवांछनीय कल्पना लोक में विचरण करते और दीवारों से टकराकर सिर फोड़ते देखा जा सकता है। व्यक्तित्व क्रमशः अधिक डरावना और घिनौना हो जाता है। आश्रितों को विवशतावश सहानुभूति रखनी पड़े, सेवा करनी पड़े तो बात दूसरी है अन्यथा संपर्क क्षेत्र के लोग विरोध या घृणा न करें तो कम से कम दूर रहने और उपेक्षा करने की नीति तो अपनाते ही हैं।

चिकित्सा विज्ञान ने इन दिनों पुराने रोगों में से कितनों के ही कारगर इलाज ढूँढ़ निकाले हैं और बीमारियों से मरने वालों का अनुपात काफी घट गया है। इतने पर भी कुछ नये रोग ऐसे हैं, जो द्रुतगति से बढ़ रहे हैं और पूर्ण मृत्यु न सही मनुष्य जाति को अर्ध मृतक स्थिति में रहने के लिए विवश कर रहे हैं। हृदय-रोग, मधुमेह, कैंसर, क्षय आदि की अभिवृद्धि से सभी को चिंता है। अस्पतालों की रिपोर्ट इन रोगों का विवरण देती है और चिकित्सा अनुसंधान

का द्वार खोलती है, किंतु कुछ रोग ऐसे हैं जो बिस्तर पकड़ने के लिए, रोने चिल्लाने के लिए विवश नहीं करते। उनके रहते लोग अपना कामधंधा किसी प्रकार करते रहते हैं। अस्तु, उनका लेखा-जोखा भी नहीं मिलता और चिकित्सा अनुसंधान के लिए भी विशेष प्रयत्न नहीं होता। इतने पर भी वे होते इतने भयंकर हैं कि मनुष्य तेजी से जीवन रस समाप्त करता चला जाता है और अपने ढंग की विलक्षण व्यथा सहते-सहते अकाल मृत्यु के मुख में ग्रास की तरह पिस जाता है। ऐसे रोगों में सर्वप्रथम है—मस्तिष्कीय तनाव और तज्जनित अनिद्रा अभिशाप।

यों ज्वर, अतिश्रम, दुर्घटना, आकस्मिक विपत्ति जैसे कारणों से भी यदा-कदा मस्तिष्कीय आवेश आ चढ़ते हैं और सिर भीतर ही भीतर गरम, उत्तेजित, अशांत दीखता है। उस बेचैनी में विचित्र उद्वेग-उच्चाटन होता है। क्या करें ? कहाँ जाएँ ? न बैठे चैन पड़ता है, न चलते, न अपना सुहाता है, न पराया। न बात करने को जी करता और न चुप रहा जाता है। सोचने का तंत्र इतना अस्त-व्यस्त हो जाता है कि नवागत कठिनाई से छुटकारा पाने का सही उपाय सोच सकना भी बन नहीं पड़ता, दैनिक जीवन के सामान्य कार्य और अनिवार्य उत्तरदायित्व निभाने तक कठिन हो जाते हैं। मानसिक तनाव जिस स्तर का होता है, उसी अनुपात में विक्षिप्तता छाती है। हल्की बेचैनी से लेकर सिर फोड़ लेने या सिर फोड़ देने की उद्विग्नता तक के छोटे-बड़े दौर आते हैं और उस उन्माद में जो बन पड़ता वह परिस्थितियों को सुलझाता नहीं वरन् अधिकाधिक उलझाता ही जाता है।

सामयिक विपत्तियों के कारण उत्पन्न हुए मानसिक तनाव फसली बुखार की तरह समय गुजरने के साथ-साथ हल्के होते चले जाते हैं। आवेश चिरस्थायी नहीं होते, वे ज्वार की तरह आते तो हैं पर भाटे की तरह उतर भी जाते हैं। जख्मों को भर देने की विशेषता हमारे रक्त में मौजूद है। विपत्तियों के आघातों की भी भरपाई कर देने की क्षमता कालचक्र में विद्यमान है। बाहरी

कठिनाइयों से उत्पन्न हुए मानसिक तनाव बरसाती नाले की तरह उफन-उछलकर ठंडे हो जाते हैं। समय के साथ स्मृति-विस्मृति में बदलती जाती है। जिन स्वजनों के बिछोह में जीवन संभव नहीं दीखता था, समयानुसार वे विस्मृत होते चले जाते हैं और उनके बिना भी निर्वाह सरलतापूर्वक होता रहता है। इसी प्रकार अमुक सुविधा छिन जाने पर भी नई असुविधाएँ सहन हो जाती हैं और फिर विपिन्नता भी स्वभाव में सम्मिलित होकर चिर सहचरी की तरह साथ-साथ रहने और गुजर करने लगती है।

शारीरिक और मानसिक रोगों की श्रृंखला में इन दिनों जिस भयंकर व्यथा की अभिवृद्धि हुई है, वह है तनाव। हममें से अधिकांश व्यक्ति मानसिक तनाव से पीड़ित रहते हैं और उसी दबाव से अशांत एवं विक्षुब्ध मनःस्थिति में समय गुजारते हैं। यह एक प्रकार का मानसिक ज्वर है। ज्वर-पीड़ितों को कितनी शक्ति उस व्यथा को सहन करने तथा निपटने में खर्च करनी पड़ती है, यह किसी से छिपा नहीं है। मानसिक तनाव से भी प्रायः उसी स्तर की क्षति होती है।

तनाव के कारण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं लेकिन व्यक्ति मन पर जो उसकी प्रतिक्रिया होती है, वह जीव रासायनिक दृष्टि से एक-सी होती है, फिर वह ठंड, भूख या अत्यधिक थकाऊ शारीरिक श्रम जैसे शारीरिक दबावों से उपजा तनाव हो, किसी बीमारी का कारण हो अथवा मनोवैज्ञानिक तनाव हो।

कनाडा के प्रख्यात शरीर वैज्ञानिक हैं, श्री हेन्स सेल्ये। इन्होंने कई वर्षों तक तनावों और उससे संबंधित समस्याओं का गंभीर अध्ययन किया है। उनका कहना है कि एक व्यापारी जब व्यापार संबंधी विचार तथा कार्य करता है और योजनाएँ बनाता है अथवा एक खिलाड़ी खेल में भाग लेता है और खेल के प्रति सतर्क रहता है अथवा एक वैज्ञानिक समस्या से जूझता है, परिकल्पना और प्रयोग करता है, तब इन सभी की बाह्य परिस्थितियाँ यद्यपि भिन्न-भिन्न होती हैं, किंतु इन क्रियाओं के कारण इन लोगों को जो

अतिरिक्त मानसिक और शारीरिक प्रयास करना होता है, उससे भीतर जो प्रतिक्रियाएँ पैदा होती हैं, उनका शरीर वैज्ञानिक रूप से एक-सा होता है। इन लोगों की अधिवृक्क ग्रंथि कार्टेक्स अधिक सक्रिय हो जाती है। रक्त से हारमोन अधिक स्त्रावित होने लगते हैं और छाती की इंडोक्राइन ग्रंथि, जिसे 'थाइमस' कहते हैं, सिकुड़ी जाती है।

इन क्रियाओं में फर्क इस बात से नहीं पड़ता कि तनाव किस कारण पड़ रहा है—वैज्ञानिक क्रिया-कलाप से या कि व्यापारिक गतिविधि से या क्रीड़ा-स्पर्धा से या किसी अन्य कारण से।

तब क्या सदा बिल्कुल एक-सी ही प्रतिक्रिया होती है ? प्रतिक्रियाएँ तो एक तरह की होती हैं, पर तनाव की तीव्रता के अनुसार उनमें भिन्नताएँ होती हैं। यानी यदि तनाव अधिक तीव्र हुआ तो यह क्रियाएँ—कार्टेक्स की सक्रियता, हारमोनों का स्त्रवण और थाइमस का सिकुड़ना अधिक तेज हो जाएँगी, कम तनाव हुआ तो कम हो जायेगी।

○ अनुकूलन के रोग

आज के उत्तेजक वातावरण में हमें अत्यधिक तनाव का सामना करना पड़ता है और इसलिए अनुकूलन की हमारी आंतरिक माँग अत्यधिक बढ़ गई है।

अत्यधिक तनाव की स्थिति में शरीर की अनुकूलन प्रणाली संकट का संकेत पाकर तेजी से क्रियाशील हो उठती है और पराशक्ति से संकटग्रस्त मोर्चे पर डट जाती है। सेल्ये का कहना है कि यही कारण है कि विशेष संकट के समय कई व्यक्ति असाधारण काम कर डालते हैं। जैसे प्राण संकट में पड़ने पर भागने की जरूरत होने पर, लंबी कूद का कभी भी अभ्यास न करने वाला कोई व्यक्ति काफी चौड़ी खाई पार कर जाए अथवा कोई वैज्ञानिक किसी असाध्य-सी समस्या का समाधान पा जाए।

लेकिन ऐसी स्थिति में, जबकि संपूर्ण अनुकूलन-ऊर्जा मुख्य मोर्चे पर डटी हो, तो शेष हिस्से में अनुकूलन क्रियाएँ शिथिल पड़ जाती हैं, इससे भीतरी अंगों की सामान्य कार्यक्षमता पर प्रभाव पड़ता है। इसी का नाम थकान है। अधिक तनाव से थकान आने की यही प्रक्रिया है। थकान से शरीर की विभिन्न मांसपेशियों की कार्यक्षमता घट जाती है, क्योंकि उन्हें पर्याप्त अनुकूलन-ऊर्जा नहीं मिल पाती। इसका शरीर पर अवश्यंभावी परिणाम होता है।

जैसे कि तेज मानसिक थकान से हृदय के पेशियों वाले भाग 'मायोकार्डियम' में स्नायविक संतुलन बिगड़ जाता है, इससे जैव-रासायनिक परिवर्तन होते हैं और रक्त के आवागमन-नियंत्रण में बाधा पहुँचती है।

कई बार आग से व्यक्ति की चमड़ी बहुत जल जाती है। ऐसे कई लोगों की डाक्टरी जाँच किये जाने पर उनके पेट में तथा आँतों में छाले पाये गये। इसका कारण भी यही है कि उनकी कुल अनुकूलन ऊर्जा जले हुए स्थानों की मरम्मत में लग जाती है। तब पाचनक्रिया की 'होमोस्टेटिक' नियंत्रण प्रणाली को जितनी अनुकूल-ऊर्जा चाहिए वह नहीं मिल पाती। लंबे समय तक इस कमी से पेट और आँतों में छाले पड़ जाते हैं।

हेन्स सेल्ये ने एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य गिनाया है। दिनों-दिन जीवन में तनाव अधिकाधिक बढ़ाया जाए, तो हमारी अनुकूलन ऊर्जा भी अधिकाधिक खर्च होती है। प्रकृति बनिया है और उसने एक निश्चित मात्रा में ही हर व्यक्ति को अनुकूलन-ऊर्जा का भंडार सौंपा है, यदि हमने उस भंडार को तेज गति से लुटाया तो उतनी ही तेजी से हमारा संतुलन डिगता जाएगा और हम भयानक बीमारियों की चपेट में आते जाएँगे। आधुनिक समाज-जीवन में ये भयानक गति से बढ़ रहे है—ये हैं हृदय रोग, कैंसर, मादक द्रव्यों का व्यसन, आतंककारी गतिविधियाँ, मारपीट, आत्महत्याएँ और तरह-तरह की रहस्यमयी बीमारियाँ। ये रोग

औद्योगिक रूप से विकसित देशों में बेहताशा बढ़ रहे हैं। हेन्स सेल्ये इन्हें "अनुकूलन के रोग" कहते हैं।

मानसिक थकान की समस्याओं पर वर्षों अनुसंधान करने वाले रूसी चिकित्सक इवान सेम्योनोविक खोरोल ने आधुनिक सभ्य समाज के लोगों को एक नौका-दौड़ में जुटे नाविकों की संज्ञा दी है, जो पूरी ताकत के साथ नाव खे रहे हैं—तेज और तेज। नाव निश्चित ही आगे बढ़ रही है, पर नाविकों की भीतरी ऊर्जा निचुड़ती जा रही है, निचुड़ चुकी है।

मानसिक उत्तेजना भी शरीर की जीवनी शक्ति को भयावह रीति से नष्ट करती है। इस ओर शरीरशास्त्री और मनःशास्त्री अब गंभीरतापूर्वक ध्यान दे रहे हैं, क्योंकि यह दिन-दिन अधिक स्पष्ट होता जाता है कि अस्वस्थता की समस्या का समाधान मात्र औषधियों की सहायता से अथवा पौष्टिक भोजन की व्यवस्था जुटाने से हल नहीं हो सकता। यदि ऐसा संभव रहा होता तो सभी संपन्न लोग आरोग्य लाभ करते और अभावग्रस्त रुग्णता एवं दुर्बलता का कष्ट क्यों भोगते ?

विषाणुओं से रक्षा के लिए विविध विधि टीके लगाना और हर वस्तु उनसे प्रभावित मानकर, अंधाधुंध छूत बरतना भी अब केवल बहम ही सिद्ध हो रहा है। बड़े आदमी फैशन की दृष्टि से स्वच्छता के चोचले इतने ज्यादा करते हैं कि उस स्थिति में उन तक विषाणुओं के पहुँचने की संभावना बहुत कम रहती है। ऐसी दशा में उन्हें तो निरोग रहना ही चाहिए, किंतु देखा यह जाता है कि स्वच्छताभिमानी ही अधिक बीमार पड़ते हैं और गंदगी से ही दिन भर खिलवाड़ करते रहने वाले मेहतर जैसे स्वच्छता कर्मचारी स्वास्थ्य की दृष्टि से किसी स्वच्छता संवेदी से पीछे नहीं रहते।

इन तथ्यों को झुठलाया नहीं जा सका, अस्तु, विचारशीलों का तकाजा यही सामने आया कि आरोग्य और रुग्णता की गुत्थी सुलझाने के लिए गहराई तक उतरा जाए और उन कारणों को ढूँढ़ा जाए जो स्वास्थ्य समस्या को उलझाने के लिए वस्तुतः

उत्तरदायी हैं। इस दिशा में प्रयास करने पर यह तथ्य सामने आये हैं कि मानसिक उत्तेजना एवं उद्विग्नता ही आरोग्य की जड़ खोखली कर डालने वाली सर्वोपरि विपत्ति है।

अमेरिका मेडिकल ऐसोसियेशन की मानसिक स्वास्थ्य समिति के सदस्य डॉ० फ्रांसिस का कथन है कि उत्तेजनाग्रस्त मनःस्थिति का दबाव रक्त संचार प्रणाली को गड़बड़ा कर रख देता है और फिर उस विकृति के फलस्वरूप नाना प्रकार के रोग उठ खड़े होते हैं।

इसी प्रकार मनःशास्त्री जे० वेसलेंड का मत है कि वृद्धावस्था मृत्यु का वारंट नहीं है। मरण को समीप लाने वाले संकट का नाम है—मानसिक क्षय—जिसका अर्थ है; निराशा, अनुत्साह और निष्क्रियता। उमंगों का अंत हो जाने से जो मानसिक रिक्तता उत्पन्न होती है, उस खीज से मनोबल घटता चला जाता है। इसका प्रभाव समस्त शरीर पर व्यापक शिथिलता के रूप में प्रस्तुत होता है, यह क्रम मृत्यु के समय को निकटतम घसीटकर ले आता है।

हार्टफोर्ट कनेक्टिकट स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ लिविंग ने अपने शोध निष्कर्षों के आधार पर घोषणा की है कि असमय में ही वृद्धावस्था का आ धमकना, दुर्बलता और रुग्णता का शिकार होना आहार पर उतना निर्भर नहीं है, जितना मानसिक असंतुलन पर। स्वास्थ्य संबंधी नियमों की उपेक्षा से भी शरीर जल्दी बीमार पड़ता है और असमय बुढ़ापे का कष्ट सहन होता है, पर सबसे अधिक प्रभाव मानसिक असंतुलन का पड़ता है, यदि मनुष्य उदास, खिन्न, क्रुद्ध चिंतित रहेगा तो फिर लाख प्रयत्न करने पर भी आरोग्य की रक्षा नहीं की जा सकेगी। तब पौष्टिक आहार और बहुमूल्य औषधि उपचार से भी कुछ काम न चलेगा। स्वास्थ्य रक्षा और दीर्घजीवन का प्रथम आधार मानसिक शांति, स्थिरता और उत्साह भरी आशावादिता को ही माना जाना चाहिए।

इन दिनों अनिद्रा व्याधि की बाढ़ आई है। गहरी और पूरी नींद किन्हीं भाग्यवानों को ही आती है। मस्तिष्क को समुचित

विश्रांति न मिलने के कारण वह संस्थान उत्तेजित हो उठता है और वह तनाव फिर शरीरगत सभी संचरण प्रक्रियाओं को अस्त-व्यस्त करके नित नये रोगों का सृजन करता है।

अनिद्रा अपने आप में कोई रोग नहीं है। मस्तिष्क का अत्यधिक और अव्यवस्थित श्रम का भार पड़ना ही उसका वास्तविक कारण है। यह कभी-कभी अधिक पढ़ने, लिखने, सोचने, बोलने जैसे मानसिक श्रम की मात्रा अधिक बढ़ जाने से भी हो सकता है, पर प्रधान कारण यह नहीं है। भावनात्मक उद्विग्नता ही मस्तिष्कीय संतुलन को सबसे अधिक नष्ट करती है। दस घंटे पढ़ने-लिखने का श्रम मस्तिष्क को जितना थकाता है, उसकी तुलना में आधा घंटा क्रोध या दुःख के विचारों में डूबे रहने पर कहीं अधिक शक्ति नष्ट हो जाती है। बीच-बीच में विश्राम करते रहने और कामों का स्वरूप बदलते रहने से हर दिन देर तक पढ़ने-लिखने जैसे साधारण मानसिक श्रम घंटों किये जा सकते हैं और उनसे कोई क्षति नहीं होती। कितने ही विद्वान् व्यक्ति वृद्धावस्था में भी आठ-दस घंटे जम कर मानसिक परिश्रम करते हैं और शांतिपूर्ण निद्रा लाभ का आनंद लेते हुए जीवनयापन करते हैं, इसके विपरीत जिन पर आवेश छाए रहते हैं, वे खिन्न, उद्विग्न, क्रुद्ध, संतप्त और विक्षुब्ध मनुष्य प्रत्यक्षतः कुछ भी मानसिक श्रम के न रहते हुए भी इतने थक जाते हैं कि उन्हें मस्तिष्कीय उत्तेजना का शिकार रहना पड़ता है। न दिन को चैन पड़ता है, न रात को नींद आती है।

दिमाग पर अधिक बोझ पड़ा रहे और गहरी नींद न आये तो चक्कर आना, सिर दर्द, रक्त चाप, स्मरण शक्ति की कमी, चिड़चिड़ापन, आँखों में जलन, मिर्गी, पागलपन, नपुंसकता जैसी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और शरीर को आवश्यक विश्राम न मिलने के कारण वह दिनों दिन दुबला और कांतिहीन होता चला जाता है।

अनिद्रा के कारण होने वाली क्षति से सभी परिचित हैं, अस्तु उसके निवारण के उपाय भी सोचे गये हैं। इसके लिए कई रासायनिक पदार्थ खोज निकाले गये हैं।

नींद न आने का कष्ट निवारण करने के लिए सामयिक उपचार के रूप में फेनोबार्बी टोन, क्लोरप्रोमाजीन, मैडोमिन, सोप्रालीन सोनेरील, अब्लीवान, न्यूसीन एच० डायजिपम मैप्रोबॉमेट प्रभृति औषधियाँ देते हैं। इन्हीं दवाओं के फार्मूलों में थोड़ा-बहुत अंतर करके अनेक फैक्टरियाँ, अनेक नामों और लेविलों के साथ अन्यान्य औषधियाँ बनाती बेचती हैं। विभिन्न देशों में उनके विभिन्न नाम हैं, उन सबकी सूची बनाई जाए तो वे दवाएँ हजारों की संख्या में पहुँच जाएँगी।

संडे एक्सप्रेस इंग्लैंड के एक लेख में ब्रिटेन में नींद की गोलियों के बढ़ते हुए प्रचलन पर चिंता व्यक्त करते हुए बताया गया था कि उस देश में एक लाख से अधिक व्यक्ति ऐसे हैं, जिनकी निंद्रा इन नशीली गोलियों की दया पर ही निर्भर है। इस प्रकार की औषधियों पर वहाँ प्रति वर्ष प्रायः २ लाख पौंड खर्च होती है। इन दवाओं की विषाक्तता सेवनकर्ताओं के स्वास्थ्य और जीवन के लिए संकट बनकर सामने आती हैं।

इन औषधियों में वारविचूरिक एसिड, अफीम का सत आदि मस्तिष्कीय गतिविधियों को कुंठित करने वाली नशीली चीजें होती हैं, जो आगे चलकर मानसिक स्वस्थता पर बुरा असर डालती हैं। उनके कारण नये-नये रोग उत्पन्न होते हैं।

अब तक एक भी ऐसी नींद लाने वाली दवा नहीं बनी जो पूर्णतया विष रहित हो। इनका सेवन लगातार करने से शरीर में जो नये संकट उत्पन्न होते हैं, वे अनिद्रा अथवा उस पीड़ा से कम घातक नहीं होते, जिनका समाधान करने के लिए इन दवाओं का प्रयोग किया गया था। आपरेशन के समय प्रयोग की जाने वाली मूर्च्छा करने वाली औषधियाँ भी आगे चलकर स्वास्थ्य संकट उत्पन्न करती हैं।

रासायनिक उपचार से संवेदन शून्यता, तंद्रा, मूर्च्छा लाने की दूरगामी हानियों को देखते हुए, विज्ञानवेत्ताओं का ध्यान अब इस दिशा में गया है कि वे विद्युत् उपचार द्वारा कृत्रिम निद्रा लाई जाए। सोचा गया है कि प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक निर्दोष सिद्ध होगा। इस संदर्भ में रूसी वैज्ञानिकों में से ए० फिलोमात्स्की, आई० सेचनोव बी० वोरिगो, एन. वेदेस्की ने विद्युत् उपचार से निद्रा लाने के संबंध में गहरा अध्ययन किया है। फ्रांस में भी ऐसे प्रयोग हुए हैं। एच. लेछूच और मालग्रेव ने विद्युत् निद्रा की संभावना को प्रत्यक्ष किया है। प्रो० रूसो ने भविष्यवाणी की है कि निकट भविष्य में रासायनिक उपचारों को हटाकर, कृत्रिम निद्रा की आवश्यकता विद्युत् धाराओं के प्रयोग द्वारा की जाया करेगी।

लेनिनग्राड के मनःशास्त्री कालेंदारोव ने मानवी स्नायु संस्थान में हल्का विद्युत् प्रवाह संचालित करके स्वाभाविक निद्रा अभीष्ट समय तक ला देने में सफलता प्राप्त की है। इस उपचार से थकान, बेचैनी, सिद दर्द जैसी अविश्रांतिजन्य व्यथा से तत्काल छुटकारा प्राप्त कर सकना संभव हो गया है। सोवियत चिकित्सा विज्ञान के तत्त्वावधान में गिल्यारोंबस्की, लिवेंतसेव, वाचिस्कोव के एक पैनल ने इस उपचार के गुण-दोषों का दूरगामी पर्यवेक्षण करने के लिए विधिवत् प्रयोग-प्रक्रिया संचालित किये हुए हैं। उनके निष्कर्ष में शिजोफ्रेनिया (मस्तिष्क शून्यता) न्यूरेस्थेनिया (स्मृति हरण) जैसे मस्तिष्कीय रोग और अल्सर, आंत्रशोथ जैसे उदर रोगों में इस पद्धति द्वारा आशाजनक ही नहीं आश्चर्यजनक लाभ भी हुआ है। ब्रोंकियल ऐस्थमा, ब्लडप्रेसर जैसे रोगों का भी उस उपचार द्वारा शमन हुआ है।

विद्युत् निद्रा का मूल लाभ है, अभीष्ट समय तक अभीष्ट गहराई वाली निद्रा संभव करके रुग्ण अवयवों को इतनी विश्रांति देना कि इस अवधि में प्रकृति के लिए बीमारी से जूझना और विकृति का निराकरण संभव हो सके। जीवित उत्तेजना में जो श्रम पड़ता है, उसी की क्षति पूर्ति करना शरीर की जीवनी शक्ति के

लिए कठिन पड़ता है। फिर वह रुग्णता से कैसे जूझेगी ? इसी झंझट में रोगी दिन-दिन गलता जाता है। यदि उसे समुचित निद्रा लाभ मिल जाए तो एक ओर विश्रांति का चैन मिले दूसरी ओर प्रकृति टूट-फूट की मरम्मत में जुट पड़े। यह दोनों ही आवश्यकताएँ निद्रा से पूरी होती हैं। रासायनिक उपचार से निद्रा लाने में विषैली, मादक औषधियों से नये संकट उत्पन्न होने की संभावना स्पष्ट थी, ऐसी दशा में विद्युत् उपचार से निद्रा लाना अपेक्षाकृत अधिक निर्दोष समझा जा रहा है, यों तो बाहर से थोपा हुआ कोई भी उपचार किसी न किसी रूप में स्वाभाविक स्वस्थता पर आघात करता ही है, सच्ची और सही निर्दोष चिकित्सा तो वही है, जो हमारी जीवनी शक्ति अपने ढंग से आप ही बिना किसी को सूचना दिये स्वयंमेव करती है।

अनिद्राजन्य संकट का सामयिक उपचार नशीली औषधियों से किया जाय अथवा विद्युत् संचार से ? इस विवाद में विद्युत् उपचारकों का पलड़ा भारी पड़ता है, क्योंकि उससे नशीली वस्तुओं के विष प्रभाव का खतरा नहीं है, साथ ही मस्तिष्क को जकड़ने की अपेक्षा संज्ञा शून्य करने में विश्राम भी अधिक गहरा मिलता है। विद्युत् उपचार से होने वाले लाभों का एक मात्र आधार यही है कि देर तक मानसिक विश्रांति की व्यवस्था जुटायी जाए तो अनुत्तेजित अवयव अपनी टूट-फूट की मरम्मत करने में स्वयं जुट सकते हैं और निवृत्ति का प्रकृति प्रदत्त सुअवसर सहज ही मिल सकता है।

इतने पर भी मूल प्रश्न जहाँ का तहाँ है। मानसिक उत्तेजना के कारण का निवारण किया जाना चाहिए। उससे उत्पन्न प्रतिक्रिया भर को रोकने के लिए नींद लाने वाली गोलियाँ अथवा विद्युत् संचार की कुछ उपयोगिता हो सकती है। मूल कारण का निवारण तो मानसिक संतुलन स्थिर कर सकने वाले आध्यात्मिक दृष्टि का परिष्कार करने से ही होगा। जीवन को हँसते-खेलते खिलाड़ी की भावना से जीने और सफलता-असफलताओं को अधिक महत्त्व देते हुए अपनी प्रसन्नता का केंद्र बिंदु कर्तव्य पालन करने तक सीमित

बनाकर कोई भी व्यक्ति विक्षोभों से बच सकता है और मानसिक संतुलन स्थिर रख सकता है।

शवासन, शिथिलीकरण मुद्रा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की योगाभ्यास से संबंधित क्रिया-प्रक्रिया ऐसी है, जो मानसिक थकान और तनाव को सहज ही दूर कर सकती है और उपचार, नींद की दवा अथवा विद्युत् संचार की तुलना में कहीं अधिक निरापद एवं लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

○ निराशा और थकान

मनोविज्ञानी सी० जी० जुँग ने अपनी पुस्तक 'मॉर्डन मेन इन सर्च ऑफ सोल' में रोगग्रस्तों की चर्चा करते हुए लिखा है—उनमें से अधिकांश ऐसे होते हैं, जिन्होंने अपने उज्ज्वल भविष्य पर से भरोसा खो दिया है। इन्हें किसी भी चिकित्सा द्वारा स्थायी रूप से अच्छा कर सकना कठिन है, एक के बाद दूसरे मर्ज उन पर हावी होते ही रहते हैं। रोग मुक्त केवल उन्हें ही किया जा सकता है, जिन्होंने अपने खोये विश्वास को पुनः वापिस लौटाने में सफलता प्राप्त कर ली।

शारीरिक और मानसिक थकान का, परिश्रम की अधिकता या पौष्टिक भोजन का अभाव उतना बड़ा कारण नहीं जितना कि मानसिक असंतुलन। मनःशास्त्र के विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उतावली, आवेश, हड़बड़ाहट, चिंता एवं भावुकता के उतार-चढ़ाव मनुष्य को अत्यधिक थका देते हैं। निराशाजन्य खीज-अधूरी आशाएँ, सामर्थ्य से अधिक ऊँची महत्त्वाकांक्षाएँ, परस्पर विरोधी विचारों के अंतर्द्वंद्व, अनिश्चित एवं अनिर्णीत विचार, आत्महीनता, सामने प्रस्तुत काम में अरुचि, असफलता की आशंका, अविश्वास और भयग्रस्तता जैसे कारणों में उलझा हुआ मस्तिष्क इतना थक जाता है, जितना कि पूरे दिन कठोर परिश्रम करने में भी नहीं थकता। ऐसे उलझे हुए मनुष्य कुछ काम होने पर भी सदा थके-थके, खिन्न और खीजे हुए दिखाई पड़ते हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय के परीक्षणों में बताया है कि अप्रिय मनुष्य से मिलने, अप्रिय परिस्थितियों में रहने से मनुष्य सबसे अधिक थकान अनुभव करता है। प्रियजनों के संपर्क में अनुकूल परिस्थितियों में और अनुकूल कार्यों में संलग्न रहकर, मनुष्य जितना काम कर सकता है, प्रतिकूलताओं के बीच रहकर वह अपेक्षाकृत चौगुनी थकान अनुभव करता है।

थकान और तनाव भरा जीवन भार है। यह एक ऐसा भार है, जिसे हम स्वयं ही अपनी मानसिक दुर्बलता एवं अस्त-व्यस्तता के आधार पर बनाते और अपने कंधों पर लादते हैं। जीवन का, संसार का और अपनी सीमा का यदि सही संतुलन रखा जा सके तो न केवल तनावरहित जीवन—हल्का-फुल्का जीवन जिया जा सकता है, वरन् इतना प्रसन्न संतुष्ट रहा जा सकता है, जिसकी शीतल सुरभि का लाभ अन्य समीपवर्ती संबंधित लोग भी उठा सकें।

अंग्रेज लेखक वेकन वृद्धावस्था में बहुत निर्धन हो गये थे। इसका एक कारण उनका किताबों में अधिक उलझे रहना और कमाई पर कम ध्यान देना भी था। एक दिन उनकी पत्नी ने कहा—बुढ़ापे में निर्धन होना कितना कष्टकर है ? क्या आपको यह स्थिति अखरती नहीं ?

वेकन ने शांत चित्त से कहा—धन कमाना आसान है। जुट पड़ेंगे तो कमा ही लेंगे, पर मैं देखता हूँ, जीवन जीना कितना कठिन है ? मैं उसी कला को सीखना आरंभ कर रहा हूँ। उसके अनुसंधान और प्रयोग मात्र में जब इतना रस मिलता है तो सोचता हूँ, उसकी अधिक उपलब्धि में न जाने कितना आनंद होगा ? प्रिये, धन उतना आनंददायक नहीं जितना जीवन का सही मूल्यांकन और उपयोग कर सकने वाले दृष्टिकोण का विकास।

एल्वर्ट स्विट्जर एक दिन बड़े तड़के घुटने टेक कर भाव भरी प्रार्थना कर रहे थे, ऐ मेरी दुनिया के स्वामी, आपने जीवन को जानने की जिज्ञासा के साथ मुझे जोड़ ही दिया तो अब जीवन को क्षीण मत होने देना। जीवन रस का प्याला इतना मधुर है कि वह

मुझसे छोड़ा न जा सकेगा। यह हट गया तो फिर मेरे लिए जीवित रह सकना असह्य हो जायेगा।

स्वास्थ्य की स्थिरता का आधार हमें मानसिक संतुलन को ही मानना होगा और जिस प्रकार पेट या रक्त के खराब न होने की सावधानी बरतते हैं, वैसे ही यह ध्यान भी रखना होगा कि भावनात्मक संक्षोभ और मस्तिष्क पर हावी होकर पूरे स्वास्थ्य संस्थान को ही चौपट करके न रख दे।

शरीर के बाह्य और भीतरी अवयवों पर मस्तिष्क का, मानसिक स्थिति का प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। वह प्रभाव शुभ भी हो सकता है, अशुभ भी यह अपनी मनमर्जी की बात है। तनाव और थकान, आवेश और उत्तेजना भरा क्लेशपूर्ण जीवन जिएँ अथवा सुख-संतोष को अपना कर पुष्प की तरह खिलते रहें, यह अपने दृष्टिकोण पर निर्भर है, परिस्थितियों पर आधारित नहीं जैसा कि आमतौर से समझा जाता है।

□ □

क्या हम सभी मनोव्याधि ग्रस्त हैं ?

●

श्रम-संतुलन और आहार-विहार की सुव्यवस्था बनाये रखकर शारीरिक तनाव से बचा जा सकता है। मानसिक श्रम को बदलते रहकर और प्रस्तुत कार्यों में दिलचस्पी रखते हुए उन्हें सुव्यवस्थित बनाने का कला-कौशल प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति से मानसिक तनावों से बचा जा सकता है। हँसते-मुस्कराते हुए हल्का-फुल्का जीवन जिया जा सकता है और सामान्य जीवन में आने वाली कठिनाइयों, समस्याओं से बचा जा सकता है। सबसे कठिन और जटिल है, भावनात्मक विकृतियाँ तथा भीरूताजन्य तनाव।

भावनात्मक विकृतियों तथा भीरूताजन्य तनावों में चिंता और भय प्रमुख हैं। इनमें से चिंता एक ऐसी भावनात्मक विकृति है, जिससे अधिकांश लोग ग्रस्त रहते हैं। अधिकांश व्यक्ति अधिकतर समय किसी न किसी चिंता के तनाव से व्यग्र-बेचैन रहते और तड़फते रहते हैं। चिंता सदा बड़ी या विशेष बातों को ही लेकर नहीं होती। कई बार तो बहुत ही मामूली, छोटी-छोटी बातों को लेकर लोग चिंता पालते रहते हैं। मन तो है, जैसा अभ्यास डाल दिया जाए, बेचारा वफादार नौकर की तरह वैसा ही आचरण करने लगता है। जब अपनी चिंता नहीं होती, तो पड़ौसियों के व्यवहार-विश्लेषण और छिद्रान्वेषण द्वारा चिंता के नए-नए आधार ढूँढ़ निकाले जाते हैं या फिर समाज के बिगड़ जाने, लोगों में भ्रष्टाचार फैल जाने, खाद्य पदार्थों में मिलावट की प्रवृत्ति बढ़ने, दो लड़के-लड़कियों द्वारा अंतर्जातीय प्रेम विवाह कर लेने, मुहल्ले की किसी बारात की व्यवस्था ठीक न होने, किसी नवविवाहित दंपत्ति का 'पेयर' ठीक न होने आदि की गंभीर चिंताएँ, प्रसन्नता और एकाग्रता को चाट जाने के लिए पर्याप्त ही सिद्ध होती है। मोटर में बैठे हैं, तो चिंता लगी है कि मोटर के सामने से आ रहे किसी ट्रक या बस की भिड़ंत न हो जाए अथवा चालक निद्राग्रस्त न हो जाए,

वायुयान में जा रहे हैं, तो चिंता हो गई कि कहीं यह विमान सहसा नीचे न गिर जाए।

धर्मपत्नी किसी से सहज सौम्य वार्तालाप कर रही है तो पति महोदय को चिंता हो गई है कि कहीं यह व्यक्ति इस वार्तालाप को अपने परिचितों के बीच गलत रूप में न प्रचारित करे। याकि कहीं उससे मेरी बुराई न करती हो अकेले में। कहीं धर्मपत्नी स्वभाव से मितभाषी हुई तो चिंता है कि लोग इसे मूर्ख या घमंडी न समझ बैठे। इसी तरह पति महोदय कार्यालय से देर से आए तो पत्नी चिंतित है कि कहीं मेरे प्रति इनका प्रेम घट तो नहीं रहा। ऐसे लोग हैं, जिन्हें उनके परिचित यदि व्यस्तता में या कि अन्यत्र ध्यान दिए होने के कारण किसी दिन नमस्कार करना भूल जाएँ तो उन्हें चिंता होने लगती है कि कहीं मेरे प्रति इसकी भावना तो परिवर्तित नहीं हो गई।

है तो चिंता एक काल्पनिक उड़ान मात्र, किंतु व्यक्ति उसे यथार्थ की तरह मानकर तनाव और भय से भर उठते हैं। यह बैठे ठाले अपने शरीर-संस्थान को एक अनावश्यक श्रम में जुटा देने तथा कष्ट में फँसा देने वाली क्रिया है। इसके परिणामस्वरूप सर्वप्रथम होता है अपच, क्योंकि उदर संस्थान स्वाभाविक गति से कार्य नहीं कर पाता। फिर अनिद्रा, सिर दर्द, सर्दी-जुकाम आदि का जो क्रम आरंभ होता है, वह हृदय रोग तक पहुँचकर दम लेता है। मनःशक्ति के अपव्यय से एकाग्रता और मनोबल का ह्रास होता है, स्मरण शक्ति शिथिल होती जाती है और जीवन में विषाद ही छाया रहता है।

चिंता करने का अभ्यस्त मन सोते में देखे गए चित्र-विचित्र स्वप्न दृश्यों का मुफ्त सिनेमा के रूप में आनंद लेना तो दूर उनकी अजीबोगरीब व्याख्याएँ ढूँढ़ता-पूछता रहता और अंधविश्वास, संत्रास तथा मतिमूढ़ता की एक निराली ही दुनिया रचता रहता है, वह हताश और भयभीत रहता है तथा अपनी वास्तविक क्षमता का एक बड़ा अंश अनायास ही गँवा बैठता है। विपत्तियों का सामना

करने में, शत्रुओं से संघर्ष में जो शक्ति व्यय की जाने पर सफलता और आनंद प्रदान करती, वह काल्पनिक भय के दबाव से क्षत-विक्षत होती रहती है। ऋण पटाने के लिए, किये जाने वाले पुरुषार्थ में यदि वही शक्ति नियोजित की गई होती, जो कर्ज के भार से लदे होने की चिंता में बहाई जा रही है, तो कर्ज उतरने से मस्तिष्क ऊँचा होता और चित्त प्रफुल्ल होता। चोर-लुटेरों की काल्पनिक विपदाओं की चिंता व्यक्ति की शक्ति को लीलती रहती है। असफल रह जाने की चिंता भी कई लोगों की मृत्यु के समान दु:खदायी प्रतीत होती है। वे इस सामान्य तथ्य को भुला बैठते हैं कि असफलता तो सभी के जीवन में आती-जाती रहती है।

अपने दुराचरण और अपराध पर तो ग्लानि स्वाभाविक है। पर उसकी भी चिंता करते रहने से मनःक्षेत्र में कुंठा और विषाद की ही वृद्धि होगी। आवश्यक है—वैसे आचरण की अपने भीतर विद्यमान जड़ों को तलाश कर उन्हें उखाड़ फेंकना तथा प्रायश्चित के रूप में समाज में सत्प्रवृत्ति के विस्तार में अपना योगदान देना कोई सृजनात्मक विधि अपनाना, जिससे मन का वह भार हल्का हो सके।

एक जर्मन मनोवैज्ञानिक ने चिंताग्रस्त लोगों का सर्वेक्षण किया। ज्ञात हुआ कि मात्र ८ प्रतिशत चिंताएँ ऐसी थीं, जिन्हें वजनदार कहा जा सकता था। १० प्रतिशत ऐसी थीं, जो थोड़े प्रयास से सुलझ गईं। १२ प्रतिशत स्वास्थ्य की सामान्य चिंताएँ थीं, जो सामान्य उपचार से ही सुलझ गईं। २० प्रतिशत ऐसी थीं जो थीं तो वर्तमान से ही संबंधित, पर जो साधारण सूझ-बूझ से सुलझ गईं। सर्वाधिक ४१ प्रतिशत चिंताएँ काल्पनिक समस्याओं और आशंकाओं से संबंधित थीं।

भय भी स्वयं उपार्जित एवं आमंत्रित ऐसी बीमारी है, जो शारीरिक रोगों से कम नहीं अधिक ही कष्टकारक है। शारीरिक रोगों में रक्त मांस ही सूखता है, पर भीरुता में शरीर भीतर ही भीतर खोखला, निस्तेज और दुर्बल होता जाता है। इसके अतिरिक्त मानसिक कमजोरी की क्षति और भी बड़ी है। बीमार शरीर को दवा-दारू तथा अच्छे आहार-विहार से जल्दी ही अच्छा कर लिया जा

सकता है, पर यदि मनःसंस्थान लड़खड़ाने लगे तो मनुष्य विक्षिप्त की श्रेणी में जा पहुँचता है और मस्तिष्कीय विशेषताएँ खो बैठने पर पशु जैसा निरर्थक जीवन-क्रम ही शेष रह जाता है। डर की भयंकरता हमें समझनी चाहिए और उससे सर्वथा मुक्ति पाने का प्रबल प्रयत्न करना चाहिए।

डर की प्रवृत्ति मानवीय अंतःकरण में इसलिये विद्यमान है कि वह संभावित खतरे की ओर से सतर्क रहे और यदि कुछ गड़बड़ी दिखाई पड़े तो उससे बचने के उपाय सोचें। यह आत्मरक्षा की वृत्ति है। जहाँ तक उसका औचित्य एवं उपयोग हो, वहाँ तक अपनाये जाना ठीक है। आग जल रही है, उससे दूर रहें, कपड़े सँभाले, उसकी चिनगारियाँ कोई दुर्घटना पैदा न करें यह सतर्कता रखना ठीक है। वन्य प्रदेश में हिंस्र-पशुओं की संभावना को ध्यान में रखें। छूत के रोगों से बचने के लिए आवश्यक स्वच्छता को अपनाएँ। अवांछनीय व्यक्तियों के संपर्क में अपने बच्चों को न आने दें आदि-आदि सतर्कताएँ सजग रखने के लिए डर का उपयोग ठीक है, पर अकारण विपत्ति की बात सोचते रहना गलत है। परीक्षा में फेल हो जाएँगे, सड़क पर चलने से दुर्घटना हो जायेगी, जमा पैसे वाली बैंक फेल हो जायेगी, मित्र विश्वासघात करेगा जैसी आशंकाएँ डराती हैं, पर समय यही बताता है कि सर्वथा निरर्थक और मन गढंत थीं।

'इलियोनॉय इन्स्टीट्यूट ऑफ टेकनॉलाजी' ने डरपोक और चिंतातुर व्यक्तियों से उनकी परेशानी का कारण पूछा तो विदित हुआ कि उन्हें भविष्य में अपने दांपत्य जीवन के असफल हो जाने, बच्चों के आवारा निकलने, व्यापार में घाटा पड़ने, बीमारी हो जाने, योजनाओं में असफलता मिलने जैसी चिंताएँ ही सवार रहती हैं। वे इन क्षेत्रों में असफल रहे व्यक्तियों के साथ अपनी तुलना करते रहते हैं। किन्हीं रोगग्रस्त दुर्घटना पीड़ित या ऐसे ही दुःखी मनुष्य के साथ बीते हुए घटना क्रम के साथ संगति मिला लेते हैं और एक ऐसा चित्र गढ़ते हैं, जिसमें उनकी भी वही दुर्गति चित्रित की गई होती है। यही बुरी चिंता आशंकाएँ उन्हें निरंतर भयभीत बनाये रहती हैं।

कई व्यक्ति बालकपन में उनके अभिभावकों द्वारा अधिक डराये या दंडित किये जाने के कारण डरपोक बन जाते हैं। कुछ के सामने छोटी अवस्था में ऐसी भयानक दुर्घटनाएँ गुजरी होती हैं और वे उनसे आतंकित होकर अपना मनोबल खो बैठते हैं। कुछ चिंतन के क्षेत्र में कोई सही साथी न मिलने के कारण एकाकी अपना कल्पना लोक गढ़ते हैं और उसमें शूल-बबूल बोकर उलझने-चुभने वाले काँटे खड़े कर लेते हैं। किसी प्रियजन का बिछोह, विश्वासघात, ऊँची आकांक्षा पर अप्रत्याशित आघात, अपमान, घाटा, असफलता, आतंक जैसे कारण भी मनुष्य के भय को इतना बढ़ा देता है कि उसकी स्थिति विक्षिप्त जैसी बन जाती है। बढ़ी हुई स्थिति में तो ऐसे व्यक्ति पागलखाने ही भेजने पड़ते हैं।

अंदर की घुटन मनःस्थिति को गड़बड़ा देती है और मनुष्य पग-पग पर डरने लगता है। तब डाक्टरी भाषा में उसे 'फोबिया या फोबिक न्यूरोसिस' कहते हैं। मानसोपचार में भय के अनुसार निदान वर्गीकरण भी हैं। मृत्यु का भय—मोनो फोबिया, पाप का भय—थैनिटो फोबिया, रोग का भय—गाइनो फोबिया, काम विकृति आतंक—पैकाटो फोबिया, विपत्ति का भय—नोजो फोबिया, अजनवी का भय-पैंथो फोबिया कहलाते हैं और भी इसके कई भेद हैं।

○ और यह भी मानसिक रोग

मानसिक रोगों की निदान पुस्तकों में आबसेसिव कंपलसिव न्यूरोसिस, एंग्जाइटी जैसे विश्लेषणों के साथ अनेक रूपों, लक्षणों और उदाहरणों के साथ चित्रित किया गया है। साइकोसिस, शाखा में से आर्गेनिक साइकोसिस, फ्रैक्शनल, पैरानोइया जैसे भेद-उपभेद हैं। संक्षेप में न्यूरोसिक हल्की और साइकोसिस बढ़ी हुई स्थिति को कहते हैं। हल्की स्थिति में दूसरों के समझाने में रोगी अपनी गल्ती और सोचने की पद्धति में त्रुटि होने की बात स्वीकार कर लेता है, किंतु बढ़ी स्थिति में नशा इतना गहरा होता है कि उसे यह अनुभव

या स्वीकार ही नहीं होता कि वह कुछ गल्ती कर रहा है। गहरे पागलपन में यही स्थिति हो जाती है। उसे यह तनिक भी आभास नहीं होता कि वह किसी मानसिक रुग्णता का कष्ट भुगत रहा है। वह अपने को सामान्य मानता है, दूसरों के द्वारा अपने प्रति किये सामान्य व्यवहारों को द्वेष-दुर्भाव की संज्ञा देता है।

कई बार दुहरे, परस्पर विरोधी विचार एक ही व्यक्ति या कार्य के संबंध में आते हैं। ज्वार में पानी बहुत ऊँचा उठता है और भाटा आने पर वह नीचा चला जाता है। नशा चढ़ने पर ताकत फूट पड़ती है और उतरने पर शिथिलता बेतरह आ घेरती है। बच्चे के गड़बड़ करने पर क्रोध में माता कसकर चाँटा जड़ देती है, पर बच्चे के सुबक कर रोते ही उसकी करुणा जाग पड़ती है और अपने को कोसते हुए बच्चे को वात्सल्यपूर्वक छाती से चिपटा लेती है। यह परस्पर विरोधी परिस्थितियाँ हुईं। कुछ मस्तिष्क में प्रिय और अप्रिय भावनाओं के ऐसे ही ज्वार-भाटे रहते हैं। आज अमुक व्यक्ति बहुत प्रिय है, कल वही बहुत बुरा लगा, आज जो काम खराब लगता है, कल उसी को करने के लिए आकुलता उठने लगी, आज जो निर्माण किया जा रहा है, कल उसी को तोड़ डालने की योजना बनकर तैयार हो गई। इस दोगली मनोवृत्ति को "कैटटोनिक शिजोफ्रेनिया" कहते हैं।

मानसिक रोगों में एक बहु प्रचलित रोग है 'हिस्टीरिया'। यों यह स्त्री, पुरुष, बाल-वृद्ध किसी को भी किसी भी आयु में आरंभ हो सकता है, पर उसका अधिक आक्रमण स्त्रियों पर होता है और उसके आरंभ होने की आयु किशोरावस्था अथवा उसके बाद नव-यौवन में प्रवेश करते समय की होती है। मस्तिष्क का शरीर पर से कुछ समय के लिए नियंत्रण टूट जाने और अचेतन में जमी विकृतियों का नंगा नृत्य दिखाने की अवांछनीय स्थिति को हिस्टीरिया, अपस्मार, मिर्गी आदि नामों से पुकारते हैं।

हिस्टीरिया को एक किस्म का सामयिक एवं मानसिक पक्षाघात कह सकते हैं। साधारण लकवे में भी गड़बड़ी तो मस्तिष्क में ही होती

है, पर उसमें सोचने की शक्ति का लोप नहीं होता, किंतु शरीर के हाथ-पैर, मुँह आदि अन्य अंग प्रभावित होते हैं। परोक्ष में स्नायु-संस्थान को जो आघात लगा है, उसे यंत्रों द्वारा जाना, आंका जा सकता है। हिस्टीरिया की स्थिति इससे थोड़ी भिन्न होती है। उसका दौरा कुछ ही समय के लिए आता है और बिना उपचार के अपने आप ही अच्छा हो जाता है। नाड़ी संस्थान की जाँच करने पर उसमें कोई खराबी प्रतीत नहीं होती। चेतना का पूर्ण लोप अथवा आंशिक व्यवधान दो ही बातें हो सकती हैं। पूरा दौरा पड़ने पर रोगी बेहोश होकर गिर जाता है। आग में जलने या गहरी चोट लगने तक का पता नहीं चलता। दाँत भिच जाते हैं, साँसें लंबी चलती हैं, घबराहट जैसी आवाजें निकलती हैं, मुँह से झाग गिरता है, हाथ-पैरों में अकड़न तथा ऐंठन के लक्षण दीखते हैं। अधूरे दौरे में गिरने की नौबत नहीं आती। रोगी जो कर रहा था वही करता रहता है। दौरे से पूर्व हाथ जो कर रहे थे, पैर जिधर चल रहे थे उधर ही उनकी गति बनी रहती है। आँखें खुली रहने पर भी ठीक से देख नहीं पातीं। इसी प्रकार कान, जीभ आदि भी मस्तिष्कीय नियंत्रण छूट जाने से अव्यवस्थित हो जाते हैं। दौरे के समय रोगी इच्छापूर्वक किसी अंग से काम नहीं ले सकता। इच्छा शक्ति तक गायब हो जाती है। मस्तिष्क न कुछ सोच सकता है और न कुछ करने के आदेश शरीर के किसी अवयव को दे सकता है। गिर पड़ने वाली और ऐठन, अकड़न उत्पन्न करने वाली स्थिति तो यह नहीं है, फिर भी मस्तिष्क और इंद्रियों का संबंध विच्छेद तो ही हो जाता है। इन्हीं सभी लक्षणों की न्यूनाधिक मात्रा को सामयिक पक्षाघात कहा जा सकता है।

गैलेन, फ्रायड, वैविनोर्स्क, होप आदि मनः विशेषज्ञों के अपने विचार हैं वे कहते हैं असंतोष से मानसिक संतुलन बिगड़ता है, उसी की एक प्रतिक्रिया 'हिस्टीरिया' है। उन्होंने इसका दोष कामेच्छा एवं दूसरी इच्छाओं की अतृप्ति के सिर थोपा है। शारकोट और वैविनोस्की आदि विशेषज्ञ इसे भय की प्रतिक्रिया मानते हैं। वे कहते हैं, किसी घटना से अथवा कल्पना, आशंका से डरने वाला

मनुष्य हिस्टीरिया का रोगी हो सकता है। शारकोट की खोजों में हिस्टीरिया ग्रसित रोगियों में दो तिहाई संख्या नवयुवतियों की होती है और उनमें से अधिकांश का मानसिक संतुलन दांपत्य जीवन की विसंगतियों के कारण बिगड़ा होता है। वे कहते हैं, स्त्रियाँ प्रायः मानसिक दृष्टि से बहुत भावुक और कोमल होती हैं। दांपत्य जीवन संतुलित रहने पर वे जहाँ बहुत पुलकित पाई जाती हैं, वहाँ उस संदर्भ में छोटे-मोटे, आघात भी उन्हें तिलमिला देते हैं। यह असंतुलन कितने ही मानसिक रोगों को जन्म देता है। उन्हीं में से एक बहु प्रचलित रोग हिस्टीरिया भी है।

निद्राचार भी एक प्रकार का अपस्मार है। हिस्टीरिया के रोगी की शारीरिक क्रियाएँ चलती रहती हैं, पर मन संज्ञा शून्य हो जाता है। मिर्गी के कुछ रोगी तो बेहोश होकर गिर पड़ते हैं, दाँत भिंच जाते हैं और मुँह से झाग निकलने लगता है, किंतु कुछ ऐसे भी होते हैं, जो दौरा पड़ने से पहले जो काम कर रहे थे, उसे ही तब तक करते रहते हैं, जब तक कि पूर्ववत् होश में नहीं आ जाते। ऐसे रोगी यदि दौरा पड़ने से पूर्व चल रहे थे, तो जिस दिशा में जिस गति से वे चल रहे थे, ठीक उसी तरह चाबी वाले खिलौने की तरह चलते चले जाएँगे। हाथ में यदि पेंसिल छील रहे थे तो दौरा सामाप्त होने तक पेंसिल का वही हिस्सा छीलते रहेंगे, जिसे पहले छील रहे थे। यह भी अपस्मार का एक प्रकार है। इसमें मनुष्य स्वयं तो संज्ञाशून्य रहता है, पर शरीर की अमुक गतिविधियाँ यथाक्रम चलते रहने से देखने वालों को साधारण स्थिति में काम करते हुए ही प्रतीत होते हैं।

इसी स्थिति का बढ़ा हुआ रूप 'निद्राचार' है। सोते-सोते चारपाई से उठकर चल देना और किसी अभ्यस्त क्रम से अभ्यास दिशा में पैरों का उठते जाना, इस क्रम का दौरे के अंत तक चलते रहना, होश में आने पर अपने को विचित्र स्थिति में पाना, वापिस लौटना और फिर बिस्तर पर सो जाना, यह बीमारी या आदत कई व्यक्तियों में देखी जाती है। बचपन में यह शिकायत अधिक होती है। उम्र बढ़ने पर मस्तिष्क का सचेतन भाग प्रखर होता जाता है और अचेतन को ऐसी

गड़बड़ियाँ पैदा करने से रोक देता है। इसलिए बचपन में जिन्हें इस तरह की व्यथा होती है, उनमें से अधिकांश की बड़े होने पर छूट जाती है। फिर भी बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन्हें सदा बनी रहती है। कइयों को यह रोग बचपन में नहीं युवा अथवा अधेड़ अवस्था में उत्पन्न होता है और बहुधा आजीवन बना रहता है।

कई बार तो इस रोग की बड़ी विचित्र स्थिति देखी जाती है, जो देखने में नहीं कहने-सुनने में भी बड़ी अजीब लगती है। रोगी कोई काम भले चंगों की तरह करता है, उसमें पूरी समझदारी बरतता है, सवाल जबाव करता है, गतिविधियों में हेर-फेर करना होता है तो बिल्कुल भले चंगों जैसी समझदारी का परिचय देता है। किसी को संदेह भी नहीं होता कि यह सब वह अपने सचेतन की मूलसत्ता को प्रसुप्त स्थिति में छोड़कर, उसके काम-चलाऊ उधार अंश के सहारे यह सारी हरकतें कर रहा है। इस सबके साथ एक विलक्षणता और भी जुड़ी होती है कि जब दौरा समाप्त होने को होता है तो अचेतन उसे चुपचाप वापस लौटा लाता है और जिस स्थिति में दौरा आरंभ हुआ था ठीक उसी में से ले जाकर छोड़ देता है। फलस्वरूप रोगी को उस पूरे घटना-क्रम का तनिक भी स्मरण नहीं रहता, जो उसने घंटों तक पूरे समझदार आदमी की तरह चलाया था।

डॉ० जैने ने निद्राचार का एक और भेद बताया है—'फ्यूग'। इस स्थिति में कुछ समय तक मनुष्य अपनी मूलस्थिति को भूलकर किसी विशिष्ट स्थिति को कल्पित कर लेता है और अपने को सचमुच ही उस स्थिति में मान लेता है। यह मान्यता दूसरे की दृष्टि में कल्पना हो सकती है, पर वह स्वयं उस दौरे की अवधि में सचमुच उस स्थिति में पहुँचा हुआ मानता है, ऐसे व्यक्ति कोई कहानी गढ़ लेते हैं और उसके साथ अपना संबंध जोड़कर इस तरह वर्णन करते हैं, मानो वह सब कुछ निश्चित रूप से उनके साथ घटित हुआ हो और बिना किसी छल-छद्म के वे किसी यथार्थता का विवरण सुना रहे हों।

ऐसे दौरे थोड़े समय के हों तो अपनी अनुभूति को भूल भी सकते हैं। कई बार उस समय की स्मृति किसी दिव्य-दर्शन की तरह चिरकाल तक स्मरण में भी बनी रहती है, देवी-देवताओं के दर्शन की स्मृतियाँ प्रायः इसी प्रकार की भ्रमित मनःस्थिति में होती हैं। भूत-प्रेतों का साक्षात्कार भी बहुधा इसी प्रकार का होता है। किसी को कई तरह की आवाजें सुनाई पड़ती हैं, किसी को अक्सर सर्प आदि दिखाई पड़ते हैं; जबकि वस्तुतः वहाँ भूत, सर्प आदि का कोई अस्तित्व नहीं होता।

इस प्रकार की कितनी ही मनोव्याधियों से ग्रस्त मनुष्य अपनी मस्तिष्कीय क्षमताओं का उपयोग नहीं कर पाता और उसे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक जीवन में असफलताओं, अनेकानेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ऊपर केवल उन्हीं मनोव्याधियों के नाम गिनाये गये हैं, जो प्रकट हैं तथा डाक्टरों की पकड़ में आ सकीं। अन्यथा अज्ञात और बहुधा सूक्ष्म रीति से प्रभावित करने वाली मनोव्याधियों में से तो एक को भी नहीं पहचाना जा सका है। अन्यथा क्या कारण है कि मनुष्य अपनी मस्तिष्कीय क्षमता का केवल सात प्रतिशत हिस्सा ही उपयोग में ला सके और शेष ९३ प्रतिशत भाग निष्क्रिय निरुपयोगी ही पड़ा रहे।

शरीर का कोई अंग निष्क्रिय अक्षम हो जाए तो शारीरिक रोग की निश्चित संभावना समझी जाती है। पक्षाघात जैसे रोगों की कल्पना की जाती है। शरीर स्वास्थ्य के लिए आवश्यक समझा जाता है कि उसका प्रत्येक अंग अवयव क्रियाशील रहने की स्थिति में हो। मस्तिष्क का जब तिरानवें प्रतिशत हिस्सा निष्क्रिय रहता है तो इसका अर्थ यही होना चाहिए कि कोई न कोई मनोव्याधि मस्तिष्क में डेरा जमाये बैठी है और मस्तिष्क को ठीक से काम नहीं करने देती। इन मनोव्याधियों से मुक्त कर मस्तिष्क को स्वस्थ संतुलित और सक्रिय बनाया जा सके जो कोई आश्चर्य नहीं कि मस्तिष्क की विलक्षण क्षमताओं से लाभ उठाने और सरल, सफल, स्निग्ध जीवन जिया जा सके।

❐ ❐

संतुलन साधें—सुखी निश्चिंत रहें

●

रोगों के आक्रमण को शरीर एक सीमा तक ही सह पाता है, उसके बाद उसकी क्रियाशक्ति जबाव देने लगती है। यही कारण है कि शरीर में रोगों के चिह्न कभी दिखाई दें, तो समझना चाहिए कि उनके बीज पहले से पड़ते और उगते रहे हैं। मस्तिष्क के बारे में भी यही सच है। सामान्य आधियों को मस्तिष्क अपने आप ही ठीक करता और उनसे निबटता रहता है। उनसे निबटने की, स्वयं उपचार करने की सामर्थ्य मस्तिष्क में एक सीमा तक ही रहती है, उसके बाद ही आत्महत्या, पागलपन जैसे भयंकर रोगों के रूप में उनका विस्फोट होता है।

यों इन रोगों की प्रतिक्रिया अकस्मात् ही उत्पन्न हुई मालूम पड़ती है, पर वस्तुतः ये मनुष्य के मन में लंबे समय से चलती आ रही उधेड़-बुन, ताने-बाने, चिंता-व्यथा, परेशानी, उद्विग्नता और आवेश की भावनाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मानसिक दुर्बलताओं के परिणामस्वरूप ही आत्महत्या और पागलपन की घटनाएँ घटती हैं।

आत्महत्या के मोटे एवं प्रत्यक्ष कारणों में गृहकलह, मानहानि, पश्चाताप, परीक्षा आदि प्रयोजनों में असफलता, भविष्य की निराशा, दरिद्रता, असाध्य रोग, दंड, भय, असफल प्रेम, आदर्शवादी दुस्साहस आदि कारण गिनाये जा सकते हैं, किंतु उसका वास्तविक कारण एक ही है—मनःक्षेत्र की ऐसी दुर्बलता जो विपरीत परिस्थितियों का तनिक-सा दौर आते ही भड़क उठती हैं और बेकाबू होकर अनर्थ के गर्त में जा गिरती हैं। दुर्बल शरीर वाले व्यक्ति भी तनिक-सी ठोकर खाकर औंधे मुँह गिर पड़ते हैं। तनिक-सी सर्दी-गर्मी न सह सकने के कारण भयंकर रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। मानसिक स्वास्थ्य को धीरे-धीरे बिगाड़ते हुए

लोग उस स्थिति तक जा पहुँचते हैं जहाँ आत्महत्या की दुर्घटना को अप्रत्याशित नहीं कहा जा सकता।

चिंतन की सही पद्धति यदि समझी और समझाई गई होती तो स्थिति को सहने या सुधारने की अभीष्ट विधि-व्यवस्था अपनाने की आदत डाली गई होती और इन आत्महत्या करने वालों में से अधिकांश के प्राण बच सकते थे, क्योंकि वस्तुतः जीवन संपदा को कूड़े-करकट के ढेर में फेंक देने को विवश करने वाली कोई भी विपत्ति इस संसार में है ही नहीं।

'मैलेन्कोलिया' के रोगी विषादग्रस्त रहते हैं, वे दुःखी, असंतुष्ट एवं क्षुब्ध रहने के लिए कोई कारण अपने इर्द-गिर्द ही ढूँढ़ लेते हैं। किसी न किसी को अपने दुःखद चिंतन का पात्र चुन लेते हैं। वस्तुतः वे व्यक्ति या परिस्थितियाँ इतने विक्षोभकारक नहीं होते जितना कि उन्हें गढ़ लिया जाता है।

'रैप्टस मेनिकलिक्स' उस सनक का नाम है, जिनमें मनुष्य दंड देने के लिए आतुर रहता है, पर वह इसके लिए अपने आपको ही चुनता है। आत्म-प्रताड़ना के लिए इसकी इच्छा निरंतर उठती है। भोजन न करने, कपड़े न पहनने, सिर धुनने से लेकर आत्महत्या करने तक की चेष्टाएँ वह करता है। कभी-कभी अपने उपयोग की आवश्यक वस्तुओं तक को तोड़-फोड़कर फेंक देता है। ऐसा करने से उसे अपने विक्षोभ का समाधान होने की बात सूझती है।

दूसरों के क्षोभ को शांत करने के लिए स्वयं दुःखी होने की स्थिति अपना लेना भी ऐसा ही विचित्र चिंतन है, जिसे अक्सर सहानुभूति एवं सहायता के लिए अपनाया जाता है। किसी स्वजन के कष्ट-निवारण के लिए अपने आप की बलि किसी देवी-देवता पर चढ़ा देना अथवा विवाह योग्य कन्याओं का इसलिए आत्मघात कर बैठना कि इससे उनके अभिभावकों को अर्थचिंता से छुटकारा मिल जाएगा—ऐसे ही दुस्साहस भरे कदम हैं। इनमें आदर्शवाद, उदारता, सहानुभूति जैसे तत्त्वों का पुट तो होता है, पर यह स्मरण नहीं

रहता कि इस कदम से अपना और दूसरों का बहुमूल्य जीवन ही नष्ट नहीं होगा, वरन् जिनके लिए यह सब किया जा रहा है, उनकी कठिनाई, चिंता एवं विपत्ति और अधिक बढ़ जायेगी।

प्राचीन काल में आत्मघात को धार्मिक प्रशंसा प्रदान करने का भी कभी-कभी प्रचलन रहा है। इसके पीछे भारत की मूल संस्कृति नहीं वरन् सामयिक विचार विकृति ही झाँकती है। संन्यासियों की स्वाभाविक मृत्यु की अपेक्षा स्वेच्छा मरण की प्रशंसा की गई है। बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म में ऐसे विधान भिक्षुजनों के लिए उनके धर्म-ग्रंथों में मिलते हैं, भले ही वे पीछे जोड़े गये हैं। पांडवों का स्वर्गारोहण, मंडन मिश्र का तुषाग्नि संदाह, ज्ञानेश्वर की जीवित समाधि आदि अनेक ऐसी घटनाएँ इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं, जिन्हें सराहा ही जाता है। चित्तौड़ की रानियों का सामूहिक रूप से आत्मदाह और मृत पतियों के साथ अनेक पत्नियों का सती हो जाना—ऐसे ही कृत्यों में गिना जाता है, जिसके लिए उन्हें प्रशंसा योग्य ठहराया जाए।

इतिहास पुराणों में ऐसे अनेक घटना प्रसंग उपलब्ध हैं, जिन में कतिपय नर-नारियों ने धार्मिक प्रयोजनों के लिए अथवा दूसरों की तुलना में अपने को अधिक आदर्शवादी, अधिक साहसी सिद्ध करने के लिए आत्मघात किये हैं। पराजित एवं असफल लोगों द्वारा प्राणत्याग करके अपनी ग्लानि मिटाने की घटनाएँ तो सदा ही होती रही हैं। उन्हें लोगों ने सराहा तो नहीं, पर सहानुभूति की दृष्टि से अवश्य देखा। मृतकों के लिए यह सहानुभूति-चिंतन भी प्रेरक बना। आत्मघात का साहस न करने पर अपनी संतान की अथवा पशु-पक्षियों की बलि चढ़ा देने की प्रथा तो एक प्रकार से किसी काल में मान्यता प्राप्त धर्म कृत्य बन गई थी और कहीं-कहीं अभी तक उसका प्रचलन मौजूद है।

आत्महत्या को भी दूसरों की हत्या के समान ही गर्हित कर्म माना जा सकता है। प्राचीनकाल में इसे बहुत बुरा कहा जाता था

और मरने के उपरांत भी इस कुकृत्य करने वाले की भर्त्सना की जाती थी।

योरोप में उन दिनों आत्महत्या करने वालों के प्रति बहुत अनुदार दृष्टिकोण था। उनकी लाशें सड़कों के आस-पास कूड़े के ढेर में दबा दी जाती थीं और भयंकर आकृतियाँ वहाँ खड़ी कर दी जाती थीं, ताकि उन मरने वालों की बदनामी हो। इन परिस्थितियों को बदलने में डेविड ह्यूम, वाल्टेयर, रूसो जैसे दार्शनिकों ने आवाज उठाई थी और कहा था, आदमी को जीने की तरह मरने की भी आजादी होनी चाहिए।

कुरान में दूसरों की हत्या करने से भी अधिक जघन्य पाप आत्महत्या को बताया है। यहूदी धर्म में ऐसा ही है, उसमें आत्महत्या करने वाले के लिए शोक मनाने और उसकी आत्मा को शांति देने के लिए प्रार्थना करने को भी मनाही है। ईसाई धर्म में भी इसे घृणित पातक बताया गया है। १९वीं शताब्दी में इंग्लैंड में एक कानून बना था, जिसमें आत्महत्या करने वाले की संपत्ति जब्त कर ली जाती थी और उसके शव को किसी ईसाई कब्रिस्तान में धार्मिक विधि से दफनाया नहीं जा सकता था।

आत्महत्या का प्रयत्न करने वाले को रोगी माना जाए या अपराधी ? इस प्रश्न के उत्तर में वैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे लोगों का उचित स्थान जेलखाना नहीं, वरन् पागलखाना है। भारत सरकार की मानसिक स्वास्थ्य परामर्शदात्री समिति को तत्कालीन केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ० सुशीला नैयर ने सुझाव दिया था कि आत्महत्या की चेष्टा एक मानसिक विकृति है, इसलिए इस प्रकार का प्रयत्न करने वालों को अपराधी नहीं वरन् रुग्ण व्यक्ति माना जाना चाहिए। अब इंग्लैंड के कानूनों में भी इस संदर्भ में सुधार कर लिया गया है, उन्हें दंडनीय नहीं माना जाता।

पागलपन भी मानसिक दुर्बलता के कारण उत्पन्न होने वाली मनोव्याधि है। अब तक रोग का विद्युतीय उपचार किया जाता है,

पर पिछले वैज्ञानिकों ने इन रोगों का अन्य उपायों से उपचार करने की विधि भी खोज निकाली है।

○ मनोरोगों का प्रेमोपचार

विश्व विख्यात मनःशास्त्री टॉमस मैलोन ने पागलपन के कारण ढूँढ़ने वाले अनेकों शोध-संस्थानों का मार्गदर्शन किया है और उन्हें परीक्षणों के आधार पर किसी उपयुक्त निष्कर्षों तक पहुँचाने में सहायता की है। उनके अनुसंधानों के निष्कर्षों में सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह पाया है कि मनुष्य दूसरों का प्यार पाना चाहता है, पर वह उसे मिल नहीं पाता। इस अभाव से उसके अंतःक्षेत्र की गहरी परतों में निराशाजन्य उदासी छा जाती है। फलतः उसका चिंतन-प्रवाह अपना सीधा रास्ता छोड़कर भटकावों में फँस जाता है। प्यार पाने की असफलता का कारण संभव है उस व्यक्ति के अपने ही दोष-दुर्गुणों में रहा हो, पर इससे क्या, उसकी आकांक्षा तो अतृप्त ही रह गई। वह यह समीक्षा कहाँ कर पाता है कि दोष अपना है या पराया। भोजन किसी कारण न मिले, पेट का विक्षोभ तो हर हालत में रहेगा ही। इसी प्रकार प्यार के अभाव में मनुष्य अपना मानसिक संतुलन धीरे-धीरे खोता चला जाता है और एक दिन स्थिति वह आ जाती है, जिसमें उसे विक्षिप्त एवं अर्द्ध-विक्षिप्त के रूप में पाया जाता है।

जो पूर्ण विक्षिप्त हो चुके हैं, उनकी बात दूसरी है, पर जो दूसरों के मन और व्यवहार का अंतर समझने में किसी सीमा तक समर्थ हैं, उनके रोग को साध्य माना जा सकता है। अधिक से अधिक यह समझा जा सकता है कि उपचार कष्ट साध्य है, पर असाध्य तो नहीं ही कहना चाहिए। ऐसे रोगियों का उपयुक्त उपचार यह है कि उन्हें उपेक्षा के वातावरण से निकाल कर स्नेह-सद्भाव का अनुभव करने दिया जाय। जिनसे उसका वास्ता पड़ता है, वे सभी उसे प्यार और सम्मान प्रदान करें। वैसा न करें जैसा कि आमतौर से पागलों के साथ किया जाता है। अटपटेपन

पर खीज आना स्वाभाविक है, पर हितैषियों को यह मानकर चलना चाहिए कि रोगी आखिर रोगी है और उसके अटपटे व्यवहार जान-बूझकर की गई उद्धतता नहीं वरन् चिंतन तंत्र के गड़बड़ा जाने की विवशता भर है। ऐसी दशा में वह तिरस्कार एवं प्रताड़ना का नहीं, दया और दुलार का अधिकारी है।

प्यार की प्यास मानवी चेतना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। पदार्थों के संग्रह, इंद्रियों की रसानुभूति के उपरांत तीसरी भूख स्नेह की है, जो व्यवहार में सम्मान के रूप में देखी जाती है। यश कमाना उसी का रूप है। प्रतिष्ठा प्राप्त करते समय मनुष्य सोचता है कि यह सम्मानकर्त्ताओं द्वारा दिया गया स्नेह-सद्भाव है। यों होता यह भ्रम ही है, किंतु असली न मिलने पर नकली से भी बहुत करके काम चलाते रहा जाता है। स्नेह के साथ सम्मान रहेगा, किंतु सम्मान का प्रदर्शन सदा स्नेह युक्त ही हो, यह आवश्यक नहीं उसमें छद्म भी घुला रह सकता है। सम्मान और यश के लिए लालायित प्रायः सभी पाये जाते हैं और उसके लिए समय, श्रम एवं धन भी खर्च करते हैं। यश-लालसा के पीछे वस्तुतः प्यार को उपलब्ध करने की आकांक्षा ही काम करती है। लोग बड़प्पन के प्रदर्शन में उसे खरीदने की विडंबना रचते रहते हैं।

पानी की प्यास से गला सूखता है और भूख से पेट ऐंठता है। प्यार के अभाव में आदमी थकता ही नहीं टूटता भी है। एकाकीपन यों अन्य प्राणियों को भी सहन नहीं, पर मनुष्य के लिए तो वह न ढोया जा सकने वाला भार है। वह साथ रहना ही नहीं चाहता ऐसे साथी भी चाहता है, जो उसके अंतस् को छूने, गुदगुदाने, खड़ा रखने और उठाने में सहायता कर सके। प्यार का अभाव अखरता तो धैर्यवानों को भी है, पर सामान्य व्यक्ति तो उसके कारण उखड़ ही जाता है। प्रायः आंतरिक उखड़ापन ही पगलाने की व्यथा बनकर सामने आता है। यों पागलपन के अतिरिक्त भी और कितने ही कारण होते हैं ?

इस प्रकार पगलाने वालों का सबसे बड़ा दोष यह होता है कि वे प्यार की प्रकृति को नहीं जानते और यह नहीं समझ पाते कि यह अपने भीतर से निकलने वाली आभा भर है, जो जहाँ भी पड़ती है, वहाँ दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक चमक उत्पन्न करती और आकर्षक लगती है। अपना प्यार ही दूसरों में प्रतिबिंबित होता है। यदि उसमें कमी हो तो दूसरों में वास्तविक सद्‌भाव भी ठीक तरह समझ सकना संभव न हो सकेगा। इसके विपरीत अपनी प्रगाढ़ आत्मीयता होने पर साथियों का सामान्य शिष्टाचार भी गहरे दुलार की अनुभूति कराता रहता है। बल्व स्वयं जलता है और अपने क्षेत्र को प्रकाशवान् करता है। व्यक्ति का अपना प्यार ही है जो विकसित होने पर दूसरों में प्रेम प्रतिदान मिलने के रूप में विदित होता रहता है।

जो इस तथ्य को समझते हैं वे पगलाने से बचे रहते हैं। चपेट में आते हैं, तो अपना उपचार आप कर लेते हैं। दूसरों की प्रतीक्षा न करके अपनी ओर से सद्‌भाव बढ़ाते हैं और उसे साथियों में, संपर्क क्षेत्र में उसका प्रतिबिंब देखते हैं। मानसिक अवसाद का यह अति सरल किंतु अत्यंत कारगर स्वसंचालित उपचार है, पर दुर्भाग्य यह है कि इस तथ्य को कोई-कोई ही समझ पाते हैं और अपनी ओर न देखकर स्नेह, सद्‌व्यवहार एवं सम्मान के लिए दूसरों का मुँह ताकते रहते हैं। न मिलने पर खीजते और दूसरों पर ही कृपणता, कृतघ्नता आदि का दोष लगाते हैं। सहयोग के अभाव में सांसारिक कामों में हानि पड़ने की बात सर्वविदित है। आंतरिक सद्‌भावों की उपलब्धि उससे भी बड़ी आवश्यकता है। इतने बड़े उपार्जन का यही सरल उपाय है कि अपनी ओर प्यार का प्रकाश फेंककर दूसरों को प्रिय पात्र बना लिया जाए और अपने ही प्रेम प्रकाश का आलोक समीपवर्ती क्षेत्र में छाया देखा जाए।

मानसोपचार की कठिनाई यह होती है कि वह पगलाये हुए रोगियों को यह दार्शनिक तथ्य समझा सकने में सफल नहीं हो पाते। इसे समझने में तथाकथित समझदार भी असफल रहते हैं।

मानसिक रोगी पहले तो अपनी विपन्नता ही स्वीकार नहीं करता, करता भी है तो उसे दूसरों की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई मानता है। जब तथ्य को स्वीकार ही नहीं किया गया तो उसके परिवर्तन के लिए बताया गया उपाय भी किस तरह गले उतरेगा ? कदाचित् ही कोई मनोरोग चिकित्सक अपने रोगियों को यह समझा सकने में सफल हो पाते होंगे कि उन्हें अपने भीतर आशा का, उल्लास का, प्रेम का स्रोत उभारना चाहिए और अपने सूखे मनःक्षेत्र को हरा-भरा कर लेना चाहिए। कितना दुर्भाग्य है कि दो वयस्क मस्तिष्क लाख प्रयत्न करने पर भी उस तथ्य को समझने में सफल नहीं होते, जिन पर कि उनकी प्रसन्नता और सफलता निर्भर है।

जो हो, उपचार तो करना होगा। ऐसी दशा में एक ही उपाय शेष रह जाता है कि विक्षिप्तता एवं अर्ध-विक्षिप्तता के रोगी से सहानुभूति रखने वाले सभी लोग अपना व्यवहार बदल लें। स्नेह, सहयोग और सम्मान का प्रदर्शन करें। आत्मीयजन होने के नाते यदि ऐसा सहज स्वाभाविक रूप से बन पड़े तो उसका अधिक प्रभाव पड़ेगा, पर यदि भीतर से वैसी उमंग न उठती हो तो भी प्रेम प्रदर्शन को कारगर उपचार मानकर, उसके लिए आवश्यक प्रयास किया जाना चाहिए।

मानसोपचार में औषधियों का, विद्युत् प्रयोगों का तथा अन्यान्य क्रिया-प्रक्रियाओं का भी महत्त्व है, पर उन सबके संयुक्त परिणाम में अधिक लाभदायक यह होता है कि पगलाये रोगी को स्नेह दुलार के वातावरण में रहने का अनुभव होने लगे। उद्धत मनोरोगियों की आक्रामक गतिविधियों पर नियंत्रण करने एवं सामान्य शिष्टाचार खो बैठने पर प्रतिबंधित भी किया जाता है और वैसा करने से उसे क्या हानि उठानी पड़ेगी ? इसका अनुभव भी कराना चाहिए। अन्यथा उद्धत आचरण बढ़ता ही जायेगा। इतने पर भी यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि मानसिक रोगों के रूप में जीवन की नाव में जो पानी घुसता है, उसके प्रवेश द्वार को प्यार

के अभाव की अनुभूति ही कहा जा सकता है। अवसाद को उत्साह में बदल देना ही मानसिक रोगों की कारगर चिकित्सा है। इसमें प्रेमोपचार को जितनी सफलता मिलती है, उतनी ही किसी अन्य प्रयोग को नहीं।

पहले कभी समझा जाता रहा था कि सोच-समझ, विचार और सूझ-बूझ मस्तिष्क का काम है, तथा भावनाएँ-संवेदनाएँ हृदय का, लेकिन यह धारणा कई वर्षों पहले गलत सिद्ध हो चुकी है और भावनाओं का क्रीड़ाक्षेत्र भी मस्तिष्क ही माना जाने लगा है। मानव मस्तिष्क के इस भाग को अभी बहुत कम ही स्थान दिया गया है। भावनात्मक मस्तिष्क के खोज का कार्य अभी नितांत आरंभिक अवस्था में ही माना जा सकता है। मस्तिष्क के भीतर मोटी और काफी लंबाई तक फैली हुई अंतस्त्वचा के भीतर विशिष्ट प्रकार की तंत्रिकाएँ फैली हुई हैं। यद्यपि यह मस्तिष्क के प्रचलित वर्गीकरण में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर सकी है तो भी यह देखा जाता है कि सुख-दुःख, भय, हर्ष, क्रोध, आवेश, करुणा, सेवा-स्नेह, कामुकता, उदारता, संकीर्णता, छल, प्रेम-द्वेष आदि भावनाओं का इसी स्थान से संबंध है और ये भावनाएँ ही हैं, जो चेतन ही नहीं अचेतन मस्तिष्क को भी प्रभावित करती हैं। इच्छा संचालित और अनिच्छा संचालित केंद्रों में भारी उलट-पुलट प्रस्तुत करती हैं।

कुछ दिन पहले शारीरिक आवश्यकतानुसार मानसिक क्रिया-कलाप की गतिविधियों का चलना माना जाता था। भूख लगती है तो पेट भरने की चिंता मस्तिष्क को होती है और पैर वैसी सुविधा वाले स्थान तक पहुँचते हैं, हाथ खाद्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं। मुँह चबाता है और पेट पचाता है। इसी प्रकार आहार के उपरांत निद्रा, विश्राम के लिए छाया, घर निवास की शैया, बिस्तर आदि की आवश्यकता अनुभव होती है। आत्मरक्षा के लिए वस्त्र, छाता, शस्त्र आदि संग्रह करने पड़ते हैं। काम क्रीड़ा के लिए जोड़ीदार ढूँढ़ना पड़ता है और फिर सृष्टि संचालन के लिए संतान। प्रेम की प्रेरणा से अन्य काम करने पड़ते हैं। इंद्रिय रसनाएँ भी शारीरिक इच्छा-

आवश्यकता की श्रेणी में आती हैं। काया की ऐसी ही आवश्यकताओं के अनुरूप मस्तिष्क की उधेड़-बुन चलती रहती है।

अचेतन मन शरीर को जीवित रखने के लिए निरंतर चलने वाले क्रिया-कलापों का संचालन करता है। सोते-जागते जो कार्य अनवरत रूप से होने आवश्यक हैं, उन्हें सँभालना उसी के द्वारा होता है। रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास, हृदय की धड़कन, आकुंचन-प्रकुंचन, पाचन-विसर्जन आदि अनेक कार्य अचेतन मस्तिष्क अपने आप कराता रहता है और हमें पता भी नहीं लगता। जागते में पलक झपकने की और सोते में करवट बदलने की क्रियाएँ सहज ही होती रहती हैं।

मस्तिष्क संबंधी मोटी जानकारी इतनी ही है। प्रिय प्राप्ति पर हर्ष—अप्रिय प्रसंगों पर विषाद, भय, क्रोध, प्रेम-प्रसंग, छल, संघर्ष जैसी मानसिक क्रियाओं को भी सामाजिक एवं चेतनात्मक आधार पर विकसित माना जाता रहा है, पर मूल उसके भी शरीर पर पड़ने वाले वर्तमान एवं भावी प्रभाव को ही समझा गया है। शरीर शास्त्रियों की दृष्टि में मस्तिष्क भी शरीर में शारीरिक प्रयोजनों की पूर्ति करने वाला एक अवयव ही है। मुँह में ग्रास जाने पर सहज प्रक्रिया के अनुसार रस ग्रंथियों से स्राव आरंभ हो जाता है। दाँत, जीभ आदि अपना काम सहज प्रेरणा से ही आरंभ कर देते हैं। उसी प्रकार समझा जाता रहा है कि शरीर से संबद्ध समस्याओं को हल करने का उपाय ढूँढ़ने और उसकी व्यवस्था बनाने का कार्य मस्तिष्क करता है। विभिन्न अवयवों पर उसका नियंत्रण है, तो पर क्यों है ? किस प्रयोजन के लिए है ? उसका उत्तर यही दिया जाता रहा है कि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही मस्तिष्क का अस्तित्व है।

पर भावनात्मक प्रसंगों का जब सिलसिला आरंभ होता है और उनका इतना अधिक होता है कि शारीरिक और मानसिक समस्त चेष्टाएँ उसी पर केंद्रित हो जाएँ, यहाँ तक कि शरीर जैसे प्रियपात्र को त्यागने में भी संकोच न हो, तब उस भाव प्रवाह का

विश्लेषण करना कठिन क्यों हो जाता है ? जब हर चिंतन और प्रयत्न शरीर की सुविधा के लिए ही नियोजित होना चाहिए तो फिर उन भावों का अस्तित्व कहाँ से आ गया, जिनका शारीरिक लाभ से कोई संबंध नहीं है वरन् और उल्टी हानि ही होती है। तब मस्तिष्क शारीरिक लाभ को, अपनी मर्यादा को छोड़कर हानि की संभावनाओं का समर्थन क्यों करता है ? इस प्रश्न का उत्तर दे सकना भौतिक मनःशास्त्र के लिए भी अभी भी संभव नहीं हो सका है।

दूसरों को दुःखी देखकर दया क्यों आती है ? किसी की सेवा करने के लिए रात भर जागने को तैयार क्यों हो जाते हैं ? अपने सुविधा-साधनों का दान-पुण्य क्यों किया जाता है ? प्रेम पात्र के मिलने पर उल्लास और वियोग में वेदना क्यों होती है ? समाज, देश, विश्व की समस्याएँ क्यों प्रभावित करती हैं ? धर्म रक्षा के लिए त्याग, बलिदान का साहस क्यों होता है ? व्रत, संयम, ब्रह्मचर्य, तप, तितीक्षा, जैसे कष्ट कर आचरण अपनाने के लिए उत्साह और संतोष क्यों होता है ? भक्ति भावना में आनंद की क्या बात है ? इस प्रकार के भावनात्मक प्रयोजन जिनके साथ शारीरिक आवश्यकता एवं अभाव की पूर्ति का कोई संबंध नहीं है, मनुष्य द्वारा क्यों अंगीकार किये जाते हैं और मस्तिष्क उनकी पूर्ति के लिए क्रियाशील हो उठता है।

भावनाएँ क्रियाशीलता उत्पन्न करती हों सो ही नहीं वरन् कई बार वे इतनी प्रबल होती हैं कि आँधी-तूफान की तरह शरीर और मन की सामान्य क्रिया को अस्त-व्यस्त कर देती हैं। किसी प्रिय पात्र की मृत्यु का इतना आघात लग सकता है कि जैसे हृदय की गति ही रुक जाएगी या मस्तिष्क विकृत हो जाएगा। किसी नृशंस कृत्य को देखकर भयभीत मनुष्य मूर्च्छित हो सकता है। आत्महत्या करने वालों की संख्या कम नहीं और वे भावोत्तेजना में ही वैसा करते हैं। ये भावनाएँ मात्र शारीरिक आवश्यकता को लेकर ही नहीं उभरी होतीं।

चिंता, भय, शोक, क्रोध, निराशा आदि आवेशों के द्वारा होने वाली निषेधात्मक हानियों से सभी परिचित हैं, वे शारीरिक रोगों से भी भयावह सिद्ध होती हैं। चिंता को चिता से बढ़कर बताया जाता है और कहा जाता है कि चिता मरने पर जलाती है किंतु चिंता जीवित को ही जलाकर रख देती है। यह भावना निषेधात्मक दिशा में गतिशील होने पर क्यों संकट उत्पन्न करती है और विधेयात्मक मार्ग पर चलकर क्यों अद्‌भुत परिणाम प्रस्तुत करती है। हमारा शरीर और मस्तिष्क क्यों उन्हें स्वीकार करता है, जबकि प्रत्यक्षतः शरीर की आवश्यकताओं या सुविधाओं का कोई सीधा संबंध नहीं है।

इस प्रश्न का उत्तर खोजते-खोजते विज्ञान ने अब मस्तिष्क का भाव चेतना केंद्र तलाश किया है। उसकी स्वल्प जानकारी अभी इतनी मिली है कि मस्तिष्क के भीतर जो मोटी और लंबाई में फैली हुई अंतस्त्वचा है, उसकी तंत्रिकाएँ अपने में कुछ ऐसे रहस्य छिपाये बैठी हैं, जो किसी कारणवश भावनाओं को उद्दीप्त करती हैं अथवा उनसे प्रभावित होकर उद्दीप्त होती हैं। इस संस्थान को भावात्मक मस्तिष्क नाम दिया गया है।

अमेरिका के राष्ट्रीय स्वास्थ्य अनुसंधान संस्था के डॉ० पाल मैकलीन, येल विश्वविद्यालय के डॉ० जोसे डैलगेडी प्रभृति वैज्ञानिकों ने मनःशास्त्र के गहन विश्लेषण के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला है कि शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक प्रखरता की कुंजी इस भावात्मक मस्तिष्क में ही केंद्रीभूत है। आहार-विहार का अपना महत्त्व है, पर उतनी व्यवस्था ठीक रखने पर भी यह निश्चित नहीं कि स्वास्थ्य ठीक ही बना रहेगा। इसी प्रकार शिक्षा एवं संगति का मस्तिष्कीय विकास से संबंध अवश्य है, पर यह निश्चित नहीं कि वैसी सुविधाएँ मिलने पर कोई व्यक्ति मनोविकारों से रहित और स्वस्थ मस्तिष्क संपन्न होगा ही। उन्होंने भावनाओं का महत्त्व सर्वोपरि माना है, सद्‌भाव संपन्न मनुष्य शारीरिक सुविधाएँ और मानसिक अनुकूलताएँ न होने पर भी समग्र रूप से स्वस्थ हो

सकता है। मनोविकारों से छुटकारा पाने से दीर्घजीवी बन सकता है और रोगमुक्त रह सकता है।

कहना न होगा कि स्वास्थ्य को नष्ट करने में मनोविकारों का हाथ विषाणुओं से भी अधिक है। साथ ही समग्र स्वास्थ्य के संपादन में भावनात्मक उत्कृष्टता का असाधारण योगदान है। अस्तु, भावनात्मक मस्तिष्क की गरिमा मानवीय सत्ता में सर्वोपरि सिद्ध होती है। अध्यात्म विज्ञान इसी को अमृत घट मानता है और उसी के परिष्कार अभिवर्धन की प्रक्रिया प्रस्तुत करता है।

मनःशास्त्रवेत्ता बताते हैं कि स्वस्थ और निखरे हुए मन की सभी भावनात्मक अभिव्यक्तियाँ मुक्त रूप से होती हैं। बच्चा इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। उन्मुक्त हास्य और उन्मुक्त रुदन, दोनों ही उसमें स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

मनुष्य को भावनात्मक संवेग प्रभावित करते ही हैं। जीवन-प्रभाव का उतार-चढ़ाव मन को भी स्पंदित करता है। परमहंस स्थिति की बात भिन्न है। अन्यथा मनुष्य मात्र को भावनात्मक उद्वेलनों से गुजरना पड़ता है।

कौन-सी परिस्थितियाँ एक व्यक्ति को अनुकूल प्रतीत होती हैं, कौन प्रतिकूल ? इसमें तो भिन्नता होती है, किंतु अनुकूल परिस्थितियों से प्रसन्नता और प्रतिकूल परिस्थितियों से परेशानी का अनुभव स्वाभाविक है। प्रसन्नता की या आनंद की अनुभूतियों को हँसी या मुस्कान के साथ अभिव्यक्त कर देने पर वे औरों में भी सहचारी भाव संचारित करती हैं और स्वयं का मन भी हल्का हो जाता है। यदि हर्ष को गुमसुम रहकर भीतर ही दबा दिया जाए, तो भावनात्मक कोमलता को इससे क्षति पहुँचती है, यही बात रोने, उदास होने के संबंध में है। मन ही मन घुटते रहने से उदासी अनेक प्रकार की ग्रंथियों का कारण बनती है। रोने पर चित्त हल्का हो जाता है, परदुःखकातरता उत्कृष्ट मनःस्थिति की प्रतिक्रिया है। भीतर की करुणा व संवेदना दुःख, पीड़ा और पतन के दृश्यों से तीव्रता से आंदोलित हो उठती है। यह हलचल आवश्यक है। जहाँ

यह हलचल दबा दी जाती है, वहाँ इन कोमल संवेदनाओं को आघात पहुँचता है और मन की ग्रंथियाँ जटिल होती जाती हैं। असफलता, असंतोष, आघात किसके जीवन में नहीं आते ? उनका आना-जाना यदि खिलाड़ी की भावना में देख ग्रहण किया जाए, तब तो चित्त-भूमि के अधिक उद्वेलन का कोई प्रश्न ही नहीं। ऐसी प्रशांत मनःस्थिति तो व्यक्तित्व का चिह्न है। पर इस प्रशांत मनोदशा में उल्लास भरपूर होता है। इसलिये अपने यहाँ प्रसन्न गंभीर मनःस्थिति को सर्वोत्कृष्ट कहा-माना गया है। पर जब स्थिति ऐसी न हो मनःक्षेत्र घटनाओं को ही गुन-धुन रहा हो तो उपयुक्त यही है कि भीतर से उठ रही रुलाई को रोका न जाए, नकली बहादुरी के प्रदर्शन का प्रयत्न मन के भीतर की घुटन को तो हल्का करेगा नहीं, मस्तिष्क की क्रियाशीलता को अवश्य क्षति पहुँचायेगा। भारी सदमे के कारण घातक रोग उत्पन्न होते देखे गये हैं। कई बार तो उनके कारण आकस्मिक मृत्यु भी हो जाती है। यदि फूट-फूट कर रो लिया गया हो या अपना दुःख खोलकर किसी विश्वस्त आत्मीय से विस्तारपूर्वक कह दिया गया हो, तो ऐसी स्थिति कदापि नहीं आती।

संवेदनशील लोगों में चारों ओर के पीड़ा और पतन को देख कर मन में "मन्यु" सहानुभूति, करुणा और संकल्प का वेग फूट पड़ता है। काव्य, चित्रकला, संगीत आदि मन की इन्हीं कोमल संवेदनाओं की ही तो अभिव्यक्तियाँ हैं। समाज-निर्माण और लोकमंगल का संकल्प ऐसी ही अनुभूतियों से दृढ़ और प्रखर होता चलता है। चारों ओर बिखरा सहज उल्लास और विराट् सौंदर्य भी इसी प्रकार मन को अभिभूत कर, उसमें ऐसी तीव्र हिलोरें उत्पन्न कर देता है कि उसकी अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती रहती है।

हँसी या आँसुओं का रासायनिक स्वरूप क्या होता है ? यह महत्त्वहीन है। यद्यपि वे भी एक से नहीं होते । प्रो० स्टुटगार्ट ने भिन्न-भिन्न भावनाओं से निकल पड़ने वाले आँसुओं का अलग-अलग विश्लेषण कर यह जानकारी एकत्र की है कि इनमें से प्रत्येक

प्रकार के आँसुओं में प्रोटीन, शर्करा, लवण और कीटाणुनाशक तत्त्वों आदि का अनुपात भिन्न-भिन्न था। साथ ही कुछ अन्य रासायनिक सम्मिश्रण भी पाये गये। इसके आधार पर उनका दावा है कि किसी के अश्रुकणों के विश्लेषण द्वारा उसके रोगों का कारण बिना उस व्यक्ति से पूछे ही बताया जा सकता है।

हठात् रुलाई रोकने से जुकाम, सिरदर्द ही नहीं, चक्कर आना, अनिद्रा, आँखें जलना, स्मरणशक्ति की कमी आदि रोग हो जाते हैं। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जेम्सवॉट के अनुसार स्त्रियाँ अपने आँसू बहाने में कंजूसी नहीं करने के कारण ही घुटन से मुक्त रहती हैं और अधिक स्वस्थ एवं दीर्घजीवी रहती हैं, जबकि पुरुष अपनी कठोर प्रकृति का दंड स्वास्थ्य के क्षरण के रूप में भोगते हैं। मनःचिकित्सक बर्नार्ड होल्स ने अपने अर्ध-विक्षिप्त रोगियों को कारुणिक दृश्यों द्वारा रुलाकर उनके चित्त को हल्का करते हुए उन्हें रोगमुक्त कर दिया।

समुद्र में ज्वार-भाटे की तरह हमारे चित्ततल में परिस्थितियों के घात-प्रतिघात, हर्ष-विषाद, उल्लास-शोक के उतार-चढ़ावों की सृष्टि करते रहते हैं। उनको सहज, मुक्त रूप में अभिव्यक्त हो जाने देना चाहिए और स्वयं बालकोचित सरलता बनाये रखना चाहिए। अधिक उत्कृष्ट स्थिति तो यही है कि मनोभूमि प्रशांत-उदार हो और द्वंद्वात्मक उभारों को संतुलित ही रखा जाए, पर यह स्थिति एक दिन में नहीं बन पाती। जब भीतर वैसी उदात्त मनोदशा नहीं है, तब ऊपर से भावोद्वेगों को दबाकर शांति बनाये रखना हानिकर ही सिद्ध होगा।

अपने दुष्कर्मों को दबाकर ऊपर से कृत्रिम शांति बनाए रखना, तो इन सबसे हटकर एक भिन्न ही प्रवृत्ति है। वह तो अपने सर्वनाश का ही मार्ग है। अपराधी कितना भी वीर और साहसी हो, धीरे-धीरे उसके गुणों का श्रेष्ठ प्रभाव घटता जाता है। दमित मनोभावनाएँ गहरे मानसिक संताप और जटिल रोग का कारण बनती हैं। हिटलर युवावस्था में धीर-वीर और साहसी

था, पर जब अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह क्रूर कर्मों की राह पर चल पड़ा, तो उसका मानसिक संताप उसे खाने लगा और खाता ही गया। उसे इसी मनस्ताप के कारण अंतिम दिनों एक प्रकार का लकवा मार गया और उसे अपने विश्वस्तों पर भी संदेह होने लगा।

पापकर्मों के उत्पन्न मानसिक संताप तो पश्चाताप प्रक्रिया एवं आत्मस्वीकृति द्वारा ही दूर होता है। भारतीय आचार्यों ने इसी हेतु प्रायश्चित विधान किया था और चांद्रायण आदि व्रत कराते समय समस्त पाप स्वीकार करने होते थे।

पश्चाताप, पाप स्वीकार और प्रायश्चित के इस विधान को कई धर्मों ने अपनाया है। अब विज्ञान भी रोगों की जड़ शरीर में नहीं मन में मानते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँच रहा है कि हमारी अधिकांश बीमारियों का कारण पूर्वकृत अथवा मन में ही दबी-छुपी प्रवृत्तियाँ, दुष्कृतियाँ हैं।

○ भावना क्षोभ से मुक्ति के लिए प्रायश्चित

घटना अमेरिका के न्यूजर्सी शहर की है। वहाँ के डॉ० नारमन वीसेंट पीले एक चिकित्सक होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भी थे। इसके साथ ही वे न्यूजर्सी के एक चर्च में प्रवचन के लिए भी जाया करते थे। एक दिन वे प्रवचन समाप्त कर चर्च की सीढ़ियों से नीचे उतर ही रहे थे कि एक बेचैन युवती उनके पास आ गयी और खड़ी होकर कहने लगी—डॉक्टर ! क्या मेरे रोग का इस संसार में कोई इलाज ही नहीं है ?

प्रश्न, इतनी हड़बड़ाहट में किया गया था कि एक बारगी तो डॉ० पीले भी चौंक उठे। फिर उन्होंने पूछा—ऐसी क्या बीमारी है तुम्हें ?

युवती ने कहा कि जब भी वह चर्च में आती है तो उसकी बाँहों में बड़ी तेज खुजली से वह बेहाल हो जाती है। उसने अपनी बाँहों को उघाड़कर बताया, उन पर लाल-लाल चकत्ते उभरे हुए थे।

उस युवती ने यह भी कहा कि यही हालत रही तो वह चर्च में आना बंद कर देगी ?

डॉ० पीले ने कहा—हो सकता है कि तुम जिस कुर्सी पर बैठती हो उसमें कोई ऐसे रासायनिक पदार्थ प्रयुक्त किये गये हों, जो तुम्हारे शरीर के अनुकूल न पड़ते हों।

अगर यही बात है तो मैं जब किसी दूसरे गिरजे में जाती हूँ अथवा दूसरी कुर्सी पर बैठती हूँ, तब तो खुजली नहीं होनी चाहिए न लेकिन तब भी ऐसा ही होता है—युवती ने अपनी समस्या का विश्लेषण किया।

डॉ० पीले एक सहृदय और प्रत्येक रोगी के प्रति सहानुभूति रखने वाले चिकित्सक थे। उन्होंने युवती को यह आश्वासन बँधाते हुए कि संसार में ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान न हो, कहा—मैं तुम्हारे फैमिली डॉक्टर से बातचीत करूँगा। शायद उनसे बातचीत के दौरान ऐसा कोई सूत्र निकल आए, जिससे कि तुम्हारी समस्या का समाधान हो सके।'

युवती के फैमिली डॉक्टर का पता लेकर डॉ० पीले ने उनसे संपर्क किया तो पता चला कि उस युवती को इंटर्नल एग्जिमा था, यह खुजली किसी रोगाणु के संक्रमण से नहीं वरन् अपने आप से भीतर ही भीतर उलझते रहने के कारण उठती है। प्रायः देखा जाता है कि जब कोई बात समझ में नहीं आ रही हो या बहुत कोशिश करने पर भी कोई चीज याद नहीं आ रही हो, तो हाथ अपने आप उठकर कनपटियों को खुजलाने लगते हैं। जब रुपये पैसों की बेहद तंगी हो और उनकी सख्त आवश्यकता अनुभव हो रही हो तो हथेलियाँ खुजलाने लगती हैं। यह खुजलाहट दिमाग में होने वाली उथल-पुथल के परिणामस्वरूप ही उठती हैं, जब व्यक्ति मानसिक रूप से किसी द्वंद्व या संघर्ष से गुजर रहा हो तो भी जोरों की खुजली मचती है और व्यक्ति खुजाते-खुजाते चमड़ी को लाल कर लेता है। इस

तरह की खुजलाहट के कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं, जिसके आधार पर डॉक्टर इंटर्नल एग्जिमा को पहचानते हैं।

गिरजे में आकर ही उस युवती को इस तरह की खुजली क्यों परेशान करती है, यह जानने के लिए डॉ० पीले ने रोगिणी को कुरेदा। आत्मीयता, स्नेह और सहानुभूति से प्रभावित होकर उक्त युवती ने अपना सारा अतीत खोलकर रख दिया। वह किसी बड़ी फर्म में एकाउंटेंट के पद पर कार्य करती थी और प्रायः गोलमाल कर थोड़ा धन चुराती रहती थी। उसी युवती के अनुसार चोरी की शुरूआत बहुत छोटी रकम से की गयी थी और हर बार वह यह सोचकर पैसे चुराती थी कि वह जल्द ही इन चुराये गये पैसों को वापस रख देगी, परंतु वह ऐसा नहीं कर पाती थी।

डॉ० पीले ने इस घटना का विश्लेषण करते हुए कहा है कि इस प्रकार उस युवती के मन में अपराध भावना घर कर गयी। जब वह चर्च में आती तो वहाँ के पवित्र वातावरण में यह भावना और उग्र हो उठती थी। परिणामस्वरूप उसकी रक्तवाहिनी की पेशियों में ऐंठन होने लगती और खुजली शुरू हो जाती।

मनःसंस्थान में जमी हुई इस रोग की जड़ों को पहचानकर डॉ० पीले ने उक्त युवती को सलाह दी कि वह फर्म के मालिक के सामने सब कुछ स्वीकार कर ले, साथ ही चुरायी गयी रकम को अदा करना भी शुरू कर दे। युवती ने नौकरी छूटने का डर बताया तो डॉ० पीले ने ढाढस बँधाया, हो सकता है तुम्हारी फर्म का मालिक तुम्हारी ईमानदारी और सचाई से प्रभावित होकर तुम्हें नौकरी से न हटाएँ, पर एक क्षण को यह मान भी लें कि तुम्हें नौकरी से हटा दिया तो तुम्हें अन्यत्र भी नौकरी मिल सकती है। नौकरी खो देने से उतनी क्षति नहीं होगी, जितनी कि अपनी आत्मा और आदर्श को खोने से हो रही है।

बात समझ में आ गयी और युवती ने अपने मालिक के पास जाकर सब कुछ कह दिया। वही हुआ, जिसकी सुखद संभावना

डॉ० पीले ने बतायी थी अर्थात् मालिक ने उसकी सच्चाई, ईमानदारी और नैतिक मूल्यों के प्रति उदित हुई दृढ़ निष्ठा से प्रभावित होकर, उसके खिलाफ कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की। इस क्षमा से युवती हृदय और पश्चाताप विदग्ध हुआ तथा उसने स्वयं ही वह पद छोड़ दिया। इस पश्चाताप और प्रायश्चित के परिणामस्वरूप आयी भावनाओं में शुद्धि के कारण युवती को दुबारा फिर कभी खुजली नहीं उठी। इसका कारण यह था कि उसका भावनाजन्य क्षोभ समाप्त हो चुका था।

शरीर की तमाम पेशियाँ स्नायु मंडल द्वारा संचालित होती हैं। छोटी-मोटी स्नायुओं का एक पूरा जाल मनुष्य शरीर में फैला हुआ है, जिसका नियंत्रण मस्तिष्क से होता है। कुछ स्नायु ऐच्छिक होते हैं, जिनका इच्छानुसार उपयोग होता है, जैसे चलना-फिरना या कोई वस्तु पकड़ना छोड़ना। यह कार्य यद्यपि पेशियों द्वारा ही होते हैं, परंतु पेशियाँ स्नायुओं द्वारा मस्तिष्क से ही निर्देश प्राप्त करती हैं। इन ऐच्छिक स्नायुओं के अतिरिक्त एक-दूसरे प्रकार के स्नायु भी होते हैं, जिन्हें अनैच्छिक कहा जाता है। इन पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं होता और ये हृदय के धड़कने, नाड़ियों के फड़कने तथा आँतों के कँपने जैसा कार्य संपन्न करते हैं।

इन अनैच्छिक स्नायुओं का नियंत्रण मस्तिष्क के उस केंद्र से होता है, जिसे 'हाईपोथैलेमस' कहते हैं। इसी केंद्र से एक नलिकाविहीन ग्रंथि भी संबंधित रहती है, जिसे पिट्यूटरी ग्रंथि कहते हैं। यह शरीर रक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा और मानसिक संतुलन को बनाए रखने में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रतिपादित करती है। पिट्यूटरी ग्रंथि का आकार यद्यपि एक चने के दाने के बराबर होता है, परंतु यह अन्य नलिका का भी नियंत्रण करती है।

शरीर के स्वास्थ्य संरक्षण का दायित्व पिट्यूटरी ग्रंथि ही मुख्य रूप से सँभालती है। डॉ० एच० सैले ने अपनी शोधों द्वारा यह पता लगाया। यह ग्रंथि खासतौर से उस समय ज्यादा कमजोर हो जाती है, जब व्यक्ति के भीतर भावनात्मक द्वंद्व,

मानसिक उथल-पुथल मची हुई हो और ऐसी स्थिति में पेशियों की ऐंठन से लेकर, त्वचा विकार, हृदय रोग, पाचन विकार, रक्तचाप से लेकर हमेशा बना रहने वाला सिर दर्द तक पैदा हो सकता है। यह तो सभी जानते हैं कि शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों का संचालन मस्तिष्क द्वारा भेजे गये निर्देशों से ही होता है। भावनाओं के कारण मस्तिष्क पर अवांछनीय दबाव बना रहेगा तो यह निश्चित ही है कि उसकी प्रतिक्रिया शरीर पर भी होगी। अधिकांश रोगों के मूल में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भावनात्मक क्षोभ ही पाया गया है, भले वह कोई दुराव-छुपाव का भाव हो अथवा आक्रोश-क्रोध का भाव।

❑ ❑

पुलकित प्रफुल्लित जीवन जिएँ

●

उच्चस्तरीय मानसिक सिद्धियाँ किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों को ही प्राप्त होती हैं, क्योंकि उन्हें प्राप्त करने के लिए जिन साधना अभ्यासों की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें हर कोई न तो जानता है और न ही करने की स्थिति में रहता है। सामान्य रूप से ही कोई प्रसन्न-पुलकित नहीं रह सकता, तो उच्चस्तरीय साधना अभ्यास के लिए उपयुक्त आवश्यक मनोभूमि किस प्रकार बन सकती है ?

मस्तिष्क को संपूर्ण रूप से जाग्रत् करने और उसकी क्षमताओं का समग्र लाभ उठाने के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि यथासंभव उसे निश्चिंत, निर्मल, हल्का-फुल्का और स्थिर बनाया जाए। सभी परिस्थितियों में प्रसन्न रहने की आदत यदि डाल ली गई तो समझना चाहिए कि चमत्कारी मस्तिष्कीय क्षमताओं को जाग्रत् करने के राजमार्ग पर कदम रख दिया गया।

दिन और रात की तरह मनुष्य जीवन में प्रिय और अप्रिय घटनाक्रम आते-जाते रहते हैं। इन उभयपक्षी अनुभूतियों के कारण ही जीवन की शोभा और सार्थकता है। यदि एक ही प्रकार की परिस्थितियाँ सदा बनी रहें तो यहाँ सब कुछ रूखा और नीरस लगने लगेगा।-सदा दिन ही रहे, कभी रात न हो, सदा मिठाई ही खाने को मिले, कभी नमक के दर्शन न हों, सबकी उम्र एक-सी रहे, न कोई छोटा हो न बड़ा, सर्दी या गर्मी की एक-सी ऋतु रहे, दूसरी बदले ही नहीं, तो फिर इस संसार की सुंदरता ही नष्ट हो जाएगी। सदा प्रिय, अनुकूल और सुखद परिस्थितियाँ बनी रहें, कभी अप्रिय और प्रतिकूल स्थिति न आवे तो कुशलता, कर्मनिष्ठा और साहसिकता की जरूरत ही न पड़ेगी। लोग आलसी, निकम्मा और नीरस जीवन जीते हुए किसी प्रकार मौत के दिन पूरे किया करेंगे।

अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति के कारण उत्पन्न होने वाली सुविधा-असुविधा का उतना महत्त्व नहीं, जितना मानवीय सद्गुणों

का। पुरुषार्थ, साहस, धैर्य, संतुलन, दूरदर्शिता जैसे सद्गुणों का विकास और परीक्षण प्रतिकूल परिस्थितियों में ही संभव है। यदि सदा अनुकूलता बनी रहे तो फिर ढर्रे का जीवन जीने वाले लोग गुणों की दृष्टि से पिछड़े ही पड़े रहेंगे। इस प्रकार के विकास की उन्हें आवश्यकता ही अनुभव न होगी।

इस प्रकार के अगणित तथ्यों का ध्यान रखते हुए स्रष्टा ने इस दुनिया में अनुकूलता उत्पन्न की है। अनुकूल स्थिति से लाभ उठाकर हम अपने सुविधा-साधनों को बढ़ाएँ और प्रतिकूलता के पत्थर से घिसकर अपनी प्रतिभा पैनी करें, यह उचित है और उपयुक्त भी।

कई व्यक्ति प्रतिकूल स्थिति में भी साहसिक संतुलन खो बैठते हैं और वे बेहिसाब दुःखी रहने लगते हैं। एक बार प्रयत्न करने पर कष्ट दूर नहीं हुआ या सफलता नहीं मिली तो निराश हो बैठते हैं। कई व्यक्ति इससे भी आगे बढ़े-चढ़े होते हैं और बैठे ठाले भविष्य में विपत्ति आने की आशंका करते रहते हैं। प्रस्तुत असुविधा के समाधान का पुरुषार्थ करें उपाय सोचें, इसकी अपेक्षा वे चिंता, भय, निराशा, आशंका, उद्विग्नता जैसी उलझनें खड़ी करके, अपने को उसमें फँसा लेते हैं और स्वनिर्मित एक नई विपत्ति गढ़कर खड़ी कर लेते हैं। इस बौद्धिक अवसाद के खतरे को और उससे उत्पन्न हानियों को हमें समय रहते समझ लेना चाहिए, ताकि दलदल में फँसने की विपत्ति से बचा जा सके।

चिंताग्रस्त रहने वाले लोग निश्चिंत व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक घाटे में रहते हैं। मनमौजी और मस्त लोगों को नियत समय पर ही समस्या का सामना करना पड़ता है, पर चिंतातुर लोग बहुत समय पहले से ही मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और हड़बड़ी के कारण अपना अच्छा भला स्वास्थ्य भी गँवा बैठते हैं। मस्तिष्क जितना अधिक समस्याओं में उलझा हुआ होगा उतना ही वह समस्याएँ सुलझाने में असमर्थ हो जायेगा। क्रोधी, आवेश ग्रस्त, उत्तेजित, आक्रोश में भरे हुए दिमाग एक प्रकार से विक्षिप्त जैसे हो

जाते हैं। वे एक ही आवेश संचालित दिशा में सोचते हैं। कई तथ्यों पर ध्यान रखते हुए सही निष्कर्ष निकालना उनके काबू से बाहर की बात हो जाती है। चिंता का कारण दूर करना तो दूर ऐसे लोग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य गँवाकर दुहरी हानि उठाते हैं।

मनुष्य के समान न तो कोई बलवान प्राणी है न निर्बल। बलवान् इसलिए है कि यदि वह सूझ-बूझ से काम ले, अपनी शक्तियों को ठीक तरह प्रयुक्त करे, अपने मधुर व्यवहार के कारण दूसरों का सद्भाव सहयोग सँजोए रहे तो प्रगति के पथ पर द्रुतगति से आगे बढ़ सकता है। निर्बल इसलिए है कि हड़बड़ी उतावली और अदूरदर्शिता अपनाये तो बने काम बिगड़ते चले जाएँगे और सफलता की संभावना असफलता बनकर सामने आ खड़ी होगी। अपनी अप्रामाणिकता और अयोग्यता सिद्ध करके वह अपने को मित्रों से रहित एकाकी बना लेगा। यदि अधीरता प्रकट करके और ओछेपन का परिचय देगा तो परिस्थितियाँ उसके विपरीत होती चली जाएँगी और अनुभव करेगा कि दुर्भाग्यग्रस्त और दुर्बल मैं ही हूँ।

चिंता और चिता में थोड़ा ही अंतर है लिपि की दृष्टि से एक बिंदु की न्यूनाधिकता है। चिता मरने के पश्चात् मनुष्य को जलाती है किंतु चिंता जीवित को ही जलाना आरंभ कर देती है। इस जलन से शरीर का सबसे बहुमूल्य अंग-मस्तिष्क झुलसता है और उसके कोमल कण कठोर हो जाते हैं। प्रमाद, दीर्घसूत्रता और निर्णय करने में असमंजस बने रहने की नई व्यथा उठ खड़ी होती है। जलन, गर्मी और खुश्की की बढ़ोत्तरी से कपाल में जाने वाला प्राणवायु विषैला बनता है और वहाँ धुआँ-सा घुमड़ता रहता है। उसकी स्वच्छ और पारदर्शी परतें धूमिल होकर, बुद्धिहीनता उत्पन्न करती हैं—ऐसे व्यक्ति स्मरण शक्ति भी खो बैठते हैं और हर घड़ी असहाय, कातर, असफल जैसे दीखते हैं। उन्हें आशा की किरणें कहीं से आती नहीं दीखतीं, चारों ओर अँधेरा ही प्रतीत होता है।

चिंतित दीखने वाला व्यक्ति प्लेटो की दृष्टि में एक आविष्कारक है। अंतर इतना ही है कि वैज्ञानिक आविष्कारक किसी ठोस आधार को पकड़ते और कुछ उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं, जबकि चिंतित व्यक्ति काल्पनिक आशंकाएँ रचता और गढ़ता रहता है, वह अपने लिए एक उलझी हुई दुनिया बनाता है और उसी में ताने-बाने बुनता हुआ अपनी क्षमता खोता गँवाता चला जाता है।

अपने आपको असमर्थ, अपंग और अनाथ मानने से ही चिंताग्रस्त मनःस्थिति बनती है। साहसी व्यक्ति कठिनाइयों को अपने पौरुष के लिए एक चुनौती मानता है और खिलाड़ी लोग जिस तरह साहस और उत्साह के साथ गुथ जाते हैं, उसी तरह आत्मविश्वासी अपने पुरुषार्थ के बल पर बड़ी दीखने वाली कठिनाइयों को तुच्छ सिद्ध करते हैं।

संगीत शास्त्री हेडेल को लकवा मार गया। दायाँ अंग बेकार हो गया। केवल बायाँ अंग ही दैनिक कृत्यों में सहायता करता था। पैसा पास में रहा नहीं। चिकित्सा तो दूर पेट भरने का भी प्रबंध नहीं रहा। क्या किया जाय ? उसे एक बात सूझी। सामूहिक गानों की उन दिनों विद्यालयों में बहुत माँग थी। हेडेल ने कुछ सामूहिक गान रचे और उनकी स्वर लिपियाँ बनाईं। एक महीने में वह पुस्तक तैयार हो गई। उसे लेकर घिसटता हुआ प्रकाशक के पास गया। पुस्तक छपी और उसकी रायल्टी से वह शेष जीवन अर्थ—चिंता से मुक्त होकर बिताने में सफल हो गया। दुर्भाग्य का रोना रोने, भीख माँगने या दीनता प्रकट करने की अपेक्षा हेडेल ने यही उचित समझा कि जो शक्ति शेष है, उसे रचनात्मक काम के लिए प्रयुक्त क्यों न करें ? कठिनाई से ग्रस्त व्यक्ति भी यदि संतुलन से काम लें तो उन्हें कोई न कोई रास्ता अवश्य मिल सकता है।

आत्महत्या करने वाले उतावले लोगों में से बहुतों के सामने इतनी बड़ी कठिनाई नहीं होती जितनी कि वे भावुकतावश अनुभव करते हैं। इसी अवास्तविक कल्पना में उलझे हुए वे लोग तिल का ताड़ बनाकर अपने प्राण खो बैठते हैं।

न्यूयार्क में एक युवक संगीतकार ने इसलिए आत्महत्या कर ली कि वह अपना प्रिय वायलिन गिरवी से छुड़ाने के लिए आवश्यक कमाई न कर सका। परीक्षा में फेल होने वाले विद्यार्थी, प्रेम-प्रणय में असफल होने वाले प्रेमी लोग, परिवार में कलह कटुता आ जाने जैसे प्रसंगों पर कितने ही लोग हत्या या आत्महत्या जैसे उद्यत कार्य कर डालते हैं। यह आवेश की स्थिति है। चिंता भी लगभग ऐसी ही भावुकता है जो निराशा जैसी मंद आत्महत्या के गर्त में धकेल कर व्यक्ति को अपंग बना देती है।

वर्तमान की चिंता करना और हल खोजने में स्थिर चित्त से तन्मय होना, यह उपयुक्त है। भूतकाल की उधेड़-बुन में खोये रहना बेकार है। ऐसा क्यों हुआ, किसने किया, भूल कहाँ रही—जैसे प्रश्नों की उखाड़-पछाड़ करते रहने से क्या लाभ ? जो बीत गया सो गया अब वह लौट नहीं सकता। उसके लिए माथा पच्ची करना बेकार है। इसी प्रकार भविष्य में क्या कठिनाई आएगी, किस संकट में होकर गुजरना पड़ेगा—जैसी बातें सोचते हुए समय से पूर्व चिंताएँ समेटना बेकार है। अपने लिए वर्तमान ही पर्याप्त है। उसको देखा, समझा जाए और जो आज की स्थिति में सर्वोत्तम कदम उठाया जा सकता है, उसी के लिए साहस समेटा जाए। वर्तमान पर केंद्रित रहना सीख लिया जाए तो चिंता करने के लिए न तो अवसर ही मिलेगा और न आवश्यकता ही प्रतीत होगी।

हमें हर घड़ी व्यस्त रहना सीखना चाहिए। जार्ज बर्नाड शा कहते थे—दु:खी और चिंतित होने के लिए मनुष्य के पास फालतू वक्त होना चाहिए। जिसके पास करने के लिए ढेरों काम पड़ा है, उसे इतनी फुरसत कहाँ होगी कि बेकार बातें सोचे और चिंता और दु:ख में डूबे।

ईश्वर प्रदत्त सौंदर्य किसी-किसी को ही मिलता है। पर हर कोई अपने हाथों अपना प्राकृतिक-सौंदर्य बना और बढ़ा सकता है। सहज मुस्कान का अभ्यास करने पर यह दिव्य उपलब्धि किसी को भी मिल सकती है। दाँत कितने ही कुरूप क्यों न हों, जब वे कमल पुष्प की

तरह खिलते हैं, तो अतीव सुंदर लगते हैं। मुसकाते हुए होठों की तुलना अन्य किसी सौंदर्य प्रसाधन से नहीं हो सकती। चेहरे को सुसज्जित करने के लिए केश सज्जा एवं रंग-रोगन के कितने ही प्रकार के उपाय प्रचलित हैं, पर उन सबसे उत्कृष्ट एवं बिना मूल्य का उपाय सहज मुस्कान से बढ़कर-और कुछ भी हो नहीं सकता। यह ऐसा चुंबकत्व है, जिससे हर किसी का मन आकर्षित होता चला जाता है। खिले हुए पुष्प पर भौंरे, तितली, मधुमक्खी के झुंड मँडराते रहते हैं। उस पर हर किसी की ललचाई दृष्टि पड़ती है। मुसकाते होंठों की भी ऐसी ही शोभा विशेषता है।

हँसते-मुस्कराते व्यक्ति के पास बैठने का, उससे बातें करने का, मित्रता साधने का, हर किसी का मन करता है। समझा जाता है कि जो अपने से संतुष्ट है, जो सफल है, जो समृद्ध है—वही प्रसन्न दिखाई दे सकता है। ऐसे व्यक्ति से कुछ पाने की आशा हर किसी को होती है। जो अपनी समस्याएँ हल कर चुका, वह दूसरों को भी वैसा ही समाधान-सहायता दे सकता है। जो प्रसन्न है वह दूसरों को प्रसन्नता दे सकता है। जो स्वयं हँसता है वह दूसरों को भी हँसा सकता है। इन्हीं बातों के लिए हर कोई तरसता है। इसलिए प्रसन्नचित्त के प्रति आकर्षित होने और उससे संबद्ध रहने के लिए यदि लोगों का मन ललचाये तो इसे स्वाभाविक ही माना जाना चाहिए। कहना न होगा कि जिसके मित्र और प्रशंसक अधिक होते हैं, वह सहयोग का आदान-प्रदान करके न केवल स्वयं आगे बढ़ता, ऊँचा उठता है, वरन दूसरों के लिए भी वैसी ही सुखद परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में समर्थ रहता है।

स्वयं प्रसन्न रहना ऐसा सद्‌गुण है, जिसके सहारे प्रसन्नता का प्रसाद दूसरों को भी वितरण किया जा सकता है। यह धन दान से भी बड़ा अनुदान है। हर कोई प्रसन्नता चाहता है। इसलिए समय लगाता, भागता, दौड़ता, दरवाजे खटखटाता और पैसा खर्च करता है। यह अनुदान जहाँ से भी मिलेगा, वे वही होंगे जो स्वयं स्वाभाविक अथवा कृत्रिम रूप से प्रसन्न, हँसते-विहसते दीखते हैं।

गायक, वादक, अभिनेता, नर्तक भीतर जैसे भी रहते हों—बाहर से अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। सिनेमा, थियेटरों में ऐसे दृश्यों की भरमार रहती है, जिनसे पात्रों को प्रसन्नता व्यक्त करते देखा जाता है। वृक्ष, उद्यान, नदी-सरोवर, बादल, बिजली आदि में प्रकृति की प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है और निहारने वाले को भी संतोष होता है। विवाह-शादियों, प्रीतिभोजों, हर्षोत्सवों और मेले-ठेलों में लोग इसलिए जाते हैं कि वहाँ विनोद-उल्लास का वातावरण रहता है। इस संपर्क में जो पहुँचता है, वह भी प्रसन्नता साथ लेकर लौटता है। इस प्रसन्नता के अनुदान को वह व्यक्ति सहज ही बाँधता रहता है, जिसने अपना स्वभाव हँसने-मुसकाने का बना लिया है।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रसन्न रहने की आदत का उत्साहवर्धक प्रभाव पड़ता है। खीजते रहने वाले—मुहँ लटकाये और झल्लाते रहने वाले अन्य सुविधाएँ होते हुए भी अपना स्वास्थ्य गिराते, गँवाते चले जाते हैं। निराश, खिन्न, क्षुब्ध, उद्विग्न मनुष्य अपने आपको दुःखी बनाते हैं, निरानंद-नीरस जिंदगी जीते हैं और संबद्ध मनुष्यों को अपनी इस दुष्प्रवृत्ति के कारण दुःखी करते हैं। ऐसे लोगों से हर कोई बचना चाहता है। हम प्रसन्न रहें, प्रसन्नता बाँटें और हँसी-खुशी का वातावरण बनाएँ, इसी में जीवन की सार्थकता है।

○ हास में मानसिक स्वास्थ्य का विकास

भारत और पाकिस्तान के बीच लड़े गये एक युद्ध में किसी अधेड़ महिला का पति मारा गया। भारतीय नारी के लिए वैधव्य मरण से भी अधिक दुःखदायी है। सो उस विदुषी को न केवल वैधव्य का दुःख ही सहना पड़ा, वरन् उस दुःख के भार से वह खिन्न, उदास रहने लगी और कुछ रोगों ने भी उसे आ घेरा। सहानुभूति व्यक्त करने के लिए भी जब कोई उसके पास आता तो स्वजन, संबंधी से लेकर परिचित और मित्रगण गंभीरता से बात करते थे। उसकी जीवन-यात्रा भी अपने दिवंगत पति के पास पहुँचने के लिए मौत के निकट जाने लगी।

आखिर उसे न जाने क्या सूझी कि एक बार वह अपनी सहेलियों के साथ फोटोग्राफर के यहाँ फोटो खिंचवाने पहुँची। सब सहेलियों के चेहरे पर तो प्रफुल्लता थी और उनके बीच विधवा सैनिक पत्नी ऐसी लग रही थी जैसे खिले हुए फूलों के बीच एक मुरझाया पुष्प। फोटो ग्राफर ने उक्त विधवा को संबोधित करते हुए कहा—'मैडम, जरा आँखों पर चमक लाइये।'

महिला ने प्रयत्न तो किया, पर उसका मुखमंडल उसी प्रकार म्लान बना रहा और बुझा-बुझापन दीखता रहा। फोटोग्राफर ने दुबारा कहा—मैडम, जरा प्रसन्न दीखने की कोशिश कीजिए।

सहेलियों में से एक स्त्री उठी और उसने फोटोग्राफर को अलग से जाकर कुछ समझाया। फोटोग्राफर और वह स्त्री कुछ क्षणों के बाद यथास्थान आ गये। फोटोग्राफर अपना कैमरा ठीक करने लगा और कैमरा ठीक करते-करते ही उसने कोई ऐसी बात कही जिससे सभी स्त्रियाँ खिल-खिलाकर हँस उठीं। अब तो उस महिला से भी नहीं रुका जा सका और उसने भी अपनी सहेलियों का साथ दिया।

इस उपहास प्रसंग से महिला में कुछ ऐसा प्रेरणा भाव आया कि उसने भी हँसना सीख लिया। फोटोग्राफर के यहाँ उसकी हँसी विधवा होने के बाद पहली हँसी थी। इसके बाद के अनुभवों का उल्लेख करते हुए उक्त महिला ने बताया है—'जिस क्षण मैं हँसी उस क्षण मुझे ऐसा लगा कि मेरे हृदय पर छायी बोझिलता समाप्त हो गयी और मुझ में एक नई जीवनी-शक्ति का संचार होने लगा। इसके बाद हँसने के किसी भी अवसर पर मैंने अपने हृदय को मुक्त कर दिया और मैंने जी खोलकर हँसना अपना स्वभाव बना लिया। हमारे परिवार के लोग कहा करते हैं कि विधवा स्त्री को हँसना नहीं चाहिए, परंतु मैं हँसी के महत्त्व को समझने लगी, क्योंकि उसने मेरा कायाकल्प कर दिया था। न जाने क्यों धीरे-धीरे स्वास्थ्य संबंधी वे शिकायतें जिनके कारण मैं स्वयं को मौत के मुँह में समझने लगी थी, वे भी दूर होने लगीं।

वस्तुतः हँसी—जो प्रफुल्लता की अभिव्यक्ति है, अपने आप में एक चिकित्सा और एक टॉनिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका के महानगर फ्रांसिस्को में घटी एक घटना, जो पिछले दिनों ही समाचार पत्रों में छपी और वैज्ञानिकों, चिकित्सकों के लिए भी चर्चित रही, इसी प्रकार की है। उक्त घटना के संदर्भ में प्रकाशित किया गया था कि नगर की प्रख्यात, धनाढ्य महिला मिसेज एडवर्ड को हृदयबेधी पीड़ा की शिकायत थी। उसे इसी रोग के कारण अनिद्रा, अपच तथा साथ ही चिंता, शोक और उद्वेग के शारीरिक, मानसिक विकारों ने भी घेर लिया था। हृदय रोग की चिकित्सा के लिए वह बड़े-बड़े अस्पतालों में सिद्धहस्त डॉक्टरों के पास गई तो उन्होंने महिला का स्वास्थ्य परीक्षण कर उसे सामान्य रूप से सही पाया। फिर क्या कारण था कि उसे हृदय-शूल, अनिद्रा और अपच जैसी शिकायतें थीं। डॉक्टर इसका कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पा रहे थे।

तभी उसे किसी ने मनोरोग चिकित्सक के पास जाने को सलाह दी। मनोचिकित्सक ने उसे प्रफुल्लित रहने के लिए कहा और निर्देश दिया कि अचानक यह होना स्वाभाविक नहीं है, इसलिए वह दिन में कम से कम तीन बार हँसने का नियम बना ले। भले ही हँसी का प्रसंग हो या न हो तो भी उसे तीन बार तो हँसना ही चाहिए।

महिला ने तीन बार हँसने के निर्देश का पालन किया। प्रातः मध्याह्न और संध्या वह हँसने का प्रयत्न करने लगी। धीरे-धीरे हँसी उसका स्वभाव बनने लगी। पति भी अपनी ओर से प्रयत्न करता कि हँसे। कोई विनोद प्रसंग न सूझ पड़ता तो वह यह कहकर खिलखिला उठती कि आज तुमने अपना निर्धारित कोर्स (हँसी का) पूरा किया है या नहीं। कुछ ही दिनों में इस प्रारंभिक प्रयास का चमत्कारी परिणाम दिखाई देने लगा और उसका स्वास्थ्य सुधरने लगा। कुछ ही महीने में वह इस स्थिति तक पहुँच गई कि न उसे

हृदयशूल होता और न कोई पीड़ा। समय पर नींद भी आती और खुलकर भूख भी लगती।

क्या कारण है कि मुक्त हास्य असाध्य रोगों को भी ठीक कर देता है। अपनी प्रयोगशाला में लंबे परीक्षण के बाद डॉ० बटलर जिस निष्कर्ष पर पहुँचे वह उल्लेखनीय है। इस संबंध में लंदन से प्रकाशित होने वाली चिकित्सा विज्ञान की महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'लैन्सेट' में भी छपा था कि मुक्त हास्य की प्रवृत्ति रोगियों और दुर्बलों के लिए चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न करती है। रोगियों में वह फिर से प्राण फूँक देती है और दुर्बल के लिए जीवन की संभावना में वृद्धि करती है।

हँसी फेफड़ों और आमाशय को वक्षस्थल में सुदृढ़ता से संयुक्त रखने और इन्हें सशक्त बनाने में बड़ी सहायक होती है, क्योंकि इसका आरंभ वहीं से होता है। हँसी यकृत, आमाशय और शरीर के अन्य भीतरी अवयवों को तीव्रता से आलोकित करती है। यह आलोड़न एवं मंथन चेतना को सुखानुभूति प्रदान करता है। घुड़सवारी से जितना लाभ शरीर को मिलता है, उतना ही लाभ और व्यायाम हास्य से भी हो जाता है। पाचन-क्रिया के दौरान आमाशय की चेष्टा ठीक वैसी ही होती है, जैसी कि दही मथते समय। जब ठठाकर हँसते हैं, तब उदर को वक्षस्थल से जोड़ने वाली पेशी नीचे की ओर सरकती है और आमाशय पर अतिरिक्त दबाव डालकर उसे झकझोर-सी डालती है। प्रायः हँसते रहने से आमाशय नृत्य-सा कर उठता है, जिससे पाचन क्रिया में तेजी आ जाती है। इससे हृदय का स्पंदन अपेक्षाकृत तीव्र हो जाता है और पूरे शरीर में रक्त संचार तेजी से होने लगता है।

शरीर के आंतरिक अवयवों पर हँसी के होने वाले प्रभाव जानने के लिए डॉ० ग्रीन का निष्कर्ष भी ज्ञातव्य है। उन्होंने बताया है—मानव शरीर की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रक्त शिराओं का कोई भी छोर ऐसा नहीं है, जिसे अट्टहास झकझोर न दे और उस पर हँसी का

प्रभाव न हो। चिकित्सा विज्ञान की भाषा में कहें तो हँसी रक्त संचार केंद्रों को अनुप्रेरित करती है और उनकी मालिश कर रक्त वेग को तीव्र करती है। हँसी का प्रभाव श्वसन क्रिया पर भी पड़ता है। वह श्वसन तंत्र को सतेज बनाती है, जिससे संपूर्ण शरीर यंत्र को ऊष्मा और कांति प्राप्त होती है।

चिकित्सा-वैज्ञानिकों का यह अध्ययन निष्कर्ष भी दृष्टव्य है कि निरंतर हँसते रहने वाले प्रफुल्ल चित्त के अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा देर तक श्रम करने में समर्थ होते हैं। यह छाती को चौड़ा करती है, कम प्रयोग में आई हुई विषाक्त वायु को फुफ्फुस कोषों से निकालकर बाहर करती है और उसमें संतुलन को, जो शरीर के सभी क्रिया व्यापारों के सम्यक रूप से संपन्न होने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है, स्थापित करने का प्रयास करती है। इसी को हम स्वास्थ्य कहते हैं, जो हँसी के द्वारा बिना मूल्य प्राप्त होता है।

ऊपर चिकित्साशास्त्रियों के जो उदाहरण दिये गये हैं, वे अपने स्वयं के अध्ययन से भी किसी न किसी रूप में अनुभव किये जा सकते हैं। जैसे कहा गया है कि हँसी शरीर की विषैली वायु को प्रश्वास के द्वारा बाहर निकाल देती है। हँसने के बाद शरीर में अनुभव होने वाले हल्केपन का यही कारण है।

हास्य का शारीरिक ही नहीं मानसिक प्रभाव भी है। अशुभ समाचार सुनकर शोकाकुल, चिंतातुर, व्यग्र, उद्विग्न और क्रुद्ध व्यक्तियों को कभी हँसी नहीं आती। इसका कारण यह है कि ये मनोविकार सर्वप्रथम चित्त की प्रफुल्लता को अपना शिकार बनाते हैं और मानसिक क्रियाओं के साथ-साथ शरीर व्यवस्था को गड़बड़ा देते हैं, ऐसे व्यक्तियों को किसी प्रसंगवश हँसी आ जाए तो फिर न संताप रहता है न शोक, न चिंता सताती है और न व्यग्रता। चमत्कारी ढंग से निरुद्वेग, शांत और निश्चिंत होकर विकारजन्य शारीरिक व मानसिक असंतुलन को हँसी नष्ट कर देती है। यही कारण है कि सफलतम डॉक्टरों ने मानस रोगों

का उपचार हँसी बताया है। एक ऐसे ही प्रख्यात चिकित्सक का कहना था—वह संतुलन जो किसी निद्राविहीन रात्रि, अशुभ समाचार या दु:ख-संताप अथवा चिंता के कारण बिगड़ सकता है, एक बार जी खोलकर हँस लेने से पूरी तरह पुनः स्थापित हो जाता है।

अमेरिका के एक मानसिक चिकित्सालय—'बटलर मेंटल हॉस्पिटल' में तो पागल लोगों को हँसी द्वारा ठीक करने के सफल प्रयोग किये जा चुके हैं। जो लोग कोई अप्रिय घटना या भावनाओं के आघात पहुँचने से विक्षिप्त हो जाते हैं, प्रायः गंभीर और उदास बने रहते हैं, हास्योपचार उनके लिए सफल चिकित्सा सिद्ध हुई है। उक्त अस्पताल के प्रबंधक डॉक्टर रे तो मानसिक स्वास्थ्य के लिए हँसी को अनिवार्य आवश्यकता मानते हैं। उनका कथन है—"मानसिक स्वास्थ्य के लिए तार्किक शक्ति के विकास की अपेक्षा हृदय से उठा हास अधिक वांछनीय है।"

मुख-मंडल पर निरंतर खेलती रहने वाली मुस्कान और हँसी का कोई अवसर न चूकना, निरोग व्यक्तियों के लिए भी उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने और स्वस्थ रखने के लिए एक टॉनिक से अधिक ही प्रभावकारी रहता है। रोगी और हताश व्यक्तियों के लिए तो वह एक बिना मूल्य मिलने वाली अमूल्य दवा है ही।

प्रफुल्लता और हल्का-फुल्का जीवन जीते हुए यदि मानसिक संतुलन को स्थिर रखा जा सके तो मस्तिष्क से निस्संदेह कल्पवृक्ष जैसा लाभ उठाया जा सकता है। शास्त्रों में उल्लेख आता है कि कल्पवृक्ष एक ऐसा पेड़ है, जिसके नीचे जाने पर जो भी कामना की जाती है, वही पूरी हो जाती है। पता नहीं, ऐसे किसी वृक्ष का अस्तित्व पृथ्वी पर है अथवा नहीं, परंतु यह निश्चित है कि मस्तिष्क से जो कुछ भी माँग की जाती है, वह उसे तुरंत प्रस्तुत करता है।

कहा जा सकता है कि कौन व्यक्ति दु:ख, कष्ट तथा कठिनाइयों को पसंद करता है। निश्चित ही कोई भी व्यक्ति उन्हें पसंद नहीं करता, लेकिन जिस ढंग का जीवन वह जीता है, जिस तरह अपने मस्तिष्कीय संतुलन को बिगाड़ता है, उसे देखकर दु:ख कष्टों को आमंत्रण देने की बात ही चरितार्थ लगती है। आवश्यक है कि मानसिक संतुलन को बनाये रहते हुए ऐसा साफ-सुथरा जीवन जिया जाए, जिससे मस्तिष्कीय कल्पवृक्ष आह्लाद और आनंद ही आनंद प्रस्तुत करे।

❑ ❑

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)